श्री कनक भवन विहारिणी बिहारी जी विजयते

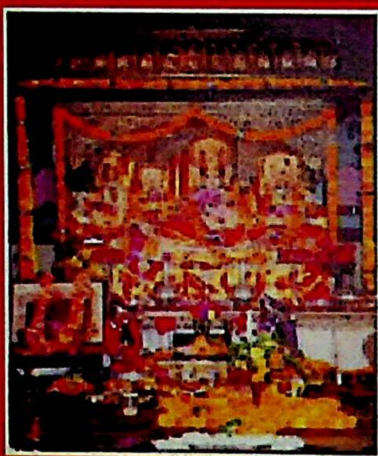
श्री कनक भवन महिमा



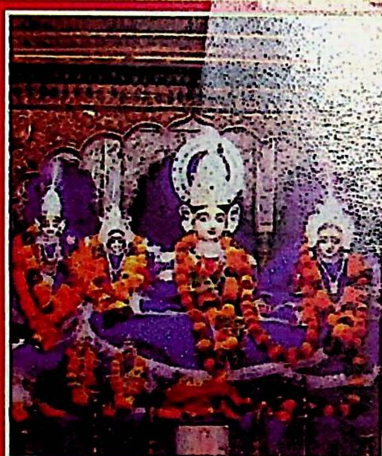
:: प्रकाशक ::

श्री वृषभानु धर्मसेतु प्रा० ट्रस्ट
श्री कनक भवन
अयोध्या (फैज़ाबाद)

श्री कनक भवन विहारिणी बिहारी जी विजयते



दीपावली झांकी



युगल सरकार



श्रीराम विवाह झांकी

(A) Kanak Bhavan Temple : Website--

<www.kanak-bhavan-temple.com>

Email:

<kanak.bhavan.temple@gmail.com>

(B) For Download of Goswami Tulsidas Books in English from Internet- Website--

<www.tulsidas-ram-books.weebly.com>

Email:

<ajaikumarchhawchharia@gmail.com>

(C) Contact Person:

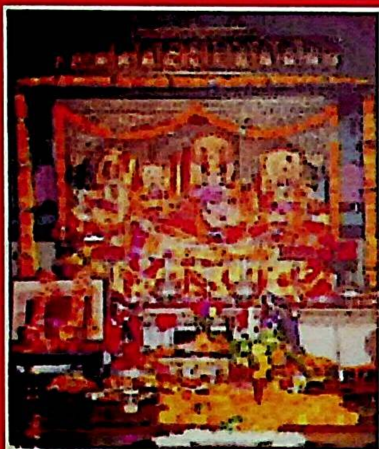
Ajai Kumar Chhawchharia.

Phone :

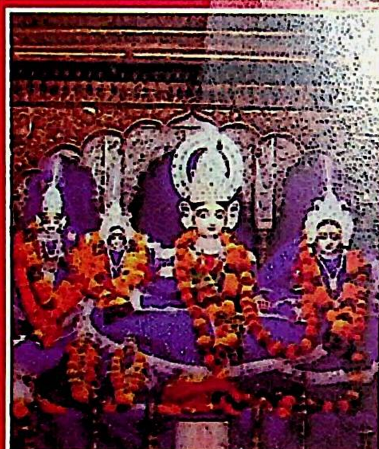
09451290400, 09935613060

श्री वृषभान धर्मसेतु प्राइवेट ट्रस्ट,
कनकभवन
अयोध्या—224123
फैज़ाबाद (उ.प्र.)

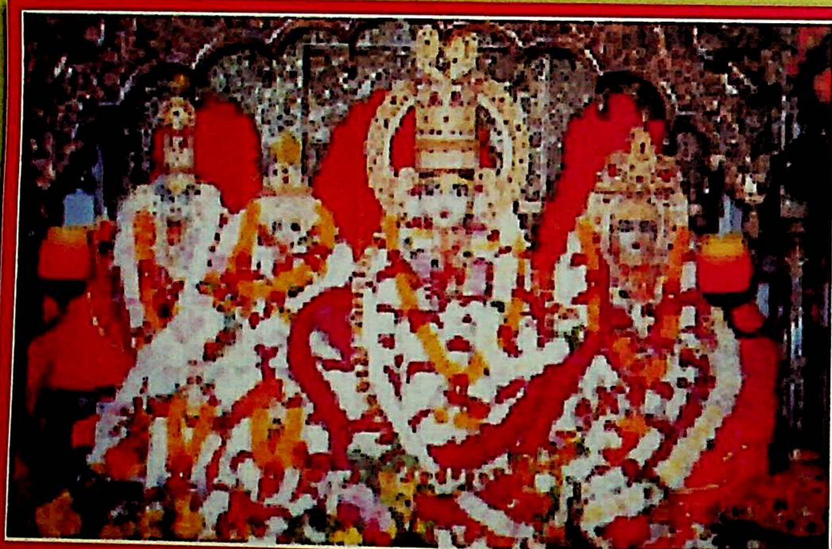
श्री कनक भवन विहारिणी बिहारी जी विजयते



दीपावली झांकी



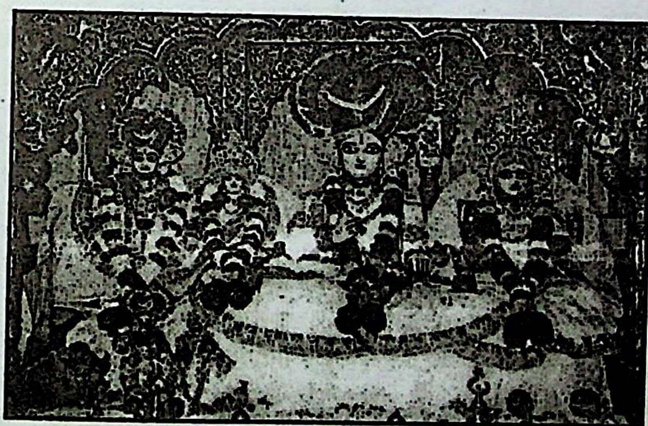
युगल सरकार



श्रीराम विवाह झांकी

श्री कनकभवन विहारिणी बिहारी जी विजयते

श्री कनकभवन महिमा



प्रकाशक

श्री वृषभान धर्मसेतु प्राइवेट ट्रस्ट,

कनकभवन

अयोध्या–224123

फैज़ाबाद (उ.प्र.)

* Published by :-
Sri Brishbhan Dharma Setu (P) Trust
Kanak Bhawan, Ayodhya

* प्रकाशक :—
श्री वृषभानु धर्मसेतु प्रा० ट्रस्ट
कनकभवन, अयोध्या

* First Compilation done by
Swami Jairam Deo

* प्रथम संकलन :—
स्वामी श्री जयरामदेव जी महाराज

* Latest 4th revised, updated and revamped edition by :-
Ajai Kumar Chhawchharia
C.E. 2011

* वर्तमान तीसरा संशोधित संपादित
संस्करण कर्ता :—
अजय कुमार छावछरिया
सं० 2008

* Book available at :-
Kanak Bhawan Temple
Po.-Ayodhya-224123
Faizabad (U.P.)
Ph.- 05278-232024

* पुस्तक प्राप्ति स्थान :—
कनक भवन मंदिर
अयोध्या—224123
फैज़ाबाद (उ.प्र.)
फोन : 05278—232024

* Price : Rs. 30/-

* न्योछावर : रू. 30/—

सूची (CONTENTS)

भज ले श्री कनक बिहारी

इस दुनिया में आना जाना रहे हमेशा जारी।
सम्हल मुसाफिर एक दिन तेरी चलने की तैयारी।।
समय कम है इसलिए तू भजले कनक बिहारी।।

इस दुनिया में रहने वालों से छूट एक दिन प्यार तेरा।
कोठी बंगला धन सम्पत्ति पर रहे नहीं अधिकार तेरा।।
छोड़ के ताली होय के खाली यही सम्पदा सारी।
सम्हल मुसाफिर एक दिन तेरी चलने की तैयारी।।
समय कम है इसलिए तू भजले कनक बिहारी।।

जाने से पहले सब सामान यहीं छोड़ना होगा।
माता-भ्राता सुत बन्धु नारी से मुख मोड़ना होगा।।
छोड़ के जाना फिर ना मिलना इनसे तुम्हें अगारी।
सम्हल मुसाफिर एक दिन तेरी चलने की तैयारी।।
समय कम है इसलिए तू भजले कनक बिहारी।।

इस गाड़ी का टाइम न टेबुल मास दिवस कोई डेट नहीं।
होय न टीटी देय न सीटी होती देखी लेट नहीं।।
बनी न पटरी रखे न गठरी लेती सभी सवारी।
सम्हल मुसाफिर एक दिन तेरी चलने की तैयारी।।
समय कम है इसलिए तू भजले कनक बिहारी।।

क्या राजा क्या रंक सभी कर इस गाड़ी में सफर गये।
जिसने उस ड्राइवर को जाना वही नाम कर अमर गये।।
सम्हल गये वो बदल गये जिन राघव सुरति सम्हारी।
सम्हल मुसाफिर एक दिन तेरी चलने की तैयारी।।
समय कम है इसलिए तू भजले कनक बिहारी।।

***

अध्याय 1

भूमिका

ग्रन्थ का तात्पर्य

इसका नाम 'कनकभवन की महिमा' रखा गया है इसका तात्पर्य यही है कि – इस ग्रन्थ में इतिहास आदि गौण हैं, मुख्य रूप से तो प्रभु की महिमा ही है। महल की विशालता, प्रबन्ध की सुन्दरता आदि तो प्रभु की छवि के आगे साधारण हैं। प्रधान तो श्रीसीतारामजी है। उनकी सुन्दरता और उनकी कृपालुता को ही भक्तजन कण्ठहार बनाये हुये हैं। उनका ही कीर्तन श्री तुलसीदास जी आदि प्राचीन महापुरुषों ने किया है। उनकी कृपा में भी माधुरी है और रूप में भी माधुरी है उनके गुणों का गान करके ही प्रेमियों को आनन्द अनुभव होता है। इसलिये इस ग्रन्थ में प्रभु की माधुरी ही माधुरी है।

दूसरी बात यह है कि भगवान का जहाँ जन्म हुआ था वह माता कौशल्या जी का महल था (वही जन्मभूमि का मन्दिर था जिसे तोड़कर मस्जिद बना दी)। परन्तु यह कनकभवन तो श्रीराम जी का अलग अपना महल था। इसमें श्रीसीताजी तथा मिथिला से आई सखियों से सहित प्रभु रहते थे। इस 'कनकभवन' में इसलिये सभी श्रीरामोपासकों की विशेष श्रद्धा है। यहाँ श्रीसीतारामजी की विहार मूर्ति है। प्रधान रूप से दिव्य सखियाँ ही यहाँ की सब सेविकायें हैं, होनी भी चाहिये। महल है न। इसलिए यहाँ सब माधुरी ही माधुरी है। इसका आनन्द तो आप लोग जब इस समस्त चरित्र को आद्योपान्त नित्य पाठ करेंगे तब प्राप्त होगा। इतिहासकारों की सी व्यर्थ आलोचना की नीरसता में न पड़कर हमने इस ग्रंथ में केवल रसमय माधुरी का ही परिवेषण किया हैं किसी का खण्डन मण्डन भी हमने नहीं किया। विवाद से तो कटुता ही उत्पन्न होती है, अतः आप लोग महिमा का आनन्द से आस्वादन करें।

आरम्भ में इस ग्रन्थ में दिव्य साकेतधाम के कनकभवन का प्रमाणों सहित वर्णन किया है जो कि उपासना में अनादि काल में मुनिजन मानते आ रहे हैं। उसी साकेत वैकुण्ठ के पुराणों में सर्वत्र वर्णन है। फिर यहाँ भूमि पर अयोध्या में जब प्रभु का अवतार हुआ तो उस अयोध्या में कनकभवन किस प्रकार बना–यह सब रहस्य महात्माओं को जैसा दिव्य दृष्टि से देखने में आया उसका सप्रमाण वर्णन किया गया है। बहुत से चरित्र वाल्मीकिय (रामायण) में नहीं हैं और ग्रन्थों में हैं। सो वे भी सत्य चरित्र हैं। महर्षियों ने दिव्य दृष्टि से देखकर लिखा है। जैसे संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी वह महाभारत के सब चरित्र घर बैठे देखते थे। वैसे ही जिनको सर्वज्ञता प्राप्त हुई उन्होंने उन चरित्रों को लिखा कि जिनको वाल्मीकि जी ने छोड़ दिया था। ऐसे ही 'कनकभवन' का विश्वकर्मा द्वारा निर्माण कराया जाना और सीताजी को केकई द्वारा कनकभवन का दिया जाना यह सब चरित्र महात्माओं को दिव्य दृष्टि से अनुभव में आये और लिखे गये। गोस्वामी तुलसीदास जी को भी दिव्य दृष्टि थी। उन्होंने प्रारम्भ में ही लिखा है– 'दिव्य दृष्टि हिय होती'। उसी दृष्टि से देखकर उन्होंने नवीन लीलाएँ, अंगद का रावण–सभा में पैर रोपना आदि लिखा है।

'कनकभवन' का जीर्णोद्धार महाराणी ने कराया किन्तु, इसके पहले ही त्रेता से लेकर

अब तक कितने ही बार इसका जीर्णोद्धार होता आया है। सूर्यवंशी सहस्त्रों राजा हो चुके हैं। वे सब अयोध्या के उपासक थे। पश्चात् द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण का भी अयोध्या आना सिद्ध होता है। शिलालेख का रहस्य हमने खोलकर समझाया है उसका मर्म विद्वान लोग स्वयं ही विचारेंगे। इसीलिए प्राचीन शिलालेख की नकल ही हम ज्यों की त्यों दे रहें हैं।

प्राचीन शिलालेख

.... शकारातिना ....

जरासंधवधं कृत्वा भगवास्तीर्थपावनः।
अगात्सप्तपुरीमुख्यामयोध्याम्बिचरन्पथि।।
विश्राम शिखरे प्राप्यं वरमामोदसयुतः।
दिव्यांगना तपस्यन्तीं नाम्नां पद्मासनां शुभाम्।।
शृंगाग्रे कनकगिरि परया कृपया हरिः।
श्रीसीताराममूर्तिम्बैं प्रदाय द्वारकामगात्।
वेदाब्धि............ब्योम.........राम............गतकलि.......।

....

चन्द्राग्निवेदपक्षं परिमिति शरदि श्रीमतौ धर्ममूर्तेः।
पौषेकृष्णाद्वितीया महिसुतदिवसे जीर्ण मूद्धृत्यभूयः।
श्रीमद्गन्धवसेनात्मजनृपतिलकौ विक्रमादित्यनामा।
श्रीसीताराममूर्तिः कनकभवनगाः स्थापयामासनूनम्।।

महाराज विक्रमादित्य के द्वारा जीर्णोद्धार का होना तो सभी विद्वान मानते हैं। कनकभवन की महिमा में भी सबका विश्वास है। क्योंकि भूमि तो वही है। जन्मभूमि से कुछ दूर पर श्रीरामजी का महल होना तो निश्चित ही है, ऐसा नास्तिक लोग भी मान रहे हैं। इसीलिये 'कनकभवन' सर्वमान्य सिद्ध हो चुका है, अतः हमें इसकी महिमा की प्रसिद्धि नहीं करनी है। हमें तो केवल प्रभु की मनहरण महिमा का गुणगान करना था, इसी से उसके अन्तर्गत कुछ प्राचीन चरित्र लिखना भी उचित पड़ा जो प्रेमियों के आनन्दवर्धन का कारण बनेगा।

महाराणी श्रीवृषभानुकुंवरिजू देवी ने भवन का जीर्णोद्धार क्यों कराया। किस प्रकार की अद्‌भुत उनकी भक्ति थी। उन्होंने योग साधना में पूर्णता करके फिर भक्ति में पूर्णता प्राप्त की और मीरा की तरह अन्त में प्रभु का साक्षात् दर्शन एवं वार्तालाप करते हुये परमधाम्र यात्रा की। यह सब चरित्र जैसा हुआ है वैसा ही लिखा गया है। यह जानकर ह्रदय आनन्द से विभोर हो उठता है कि एक महारानी होकर भी कितना तप–त्याग था उनमें। यह आप सब ग्रन्थ में पढ़ेंगे ही।

प्राचीन ग्रन्थों में भक्तमाल में जहाँ–जहाँ कनकभहवन का वर्णन आया है उन सब भक्त–चरित्रों का भी इसमें संक्षेप में संकलन कर दिया गया है। उन चरित्रों से पता लगता है कि इस जीर्णोद्धार होने से पहिले ही महात्माओं को कितनी श्रद्धा कनकभवन के प्रति थी। किस प्रकार यहाँ बड़े–बड़े प्रसिद्ध संत भी चरणों में नूपुर बाँध कर नृत्य करते हुये पद गाते थे। अब

महल का नव निर्माण विशाल रूप में होने के पश्चात् जो कुछ आनन्द और अनुभव भक्तों को हुये हैं वह भी संक्षेप में लिख दिये हैं। जिन भक्तों को कोई नवीन चरित्र और भी मालूम हो वे भी मुझे लिख भेजने की कृपा करें, उनको अगले संस्करण के छपने पर सम्मिलित करने का प्रयास किया जायेगा।

चमत्कार–अर्थ और महत्त्व

इस 'कनकभवन–महिमा' नामक ग्रन्थ के लिखने में मैंने जो कुछ लिखा है सब प्रमाण सहित लिखा है। कोई अतिशयोक्ति इसमें नहीं है। अतिशयोक्ति वाले सैकड़ों चमत्कार महात्माओं ने बताये पर वे मेरी समझ में नहीं आये इसलिये नहीं लिखे गये। जिन चरित्रों को मैंने प्रमाण सहित सत्य पाया है वे ही चरित्र इसमें संकलित किये गये हैं। वैसे तो परमात्मा को सर्वशक्ति वाला – "कर्तु अकर्तु अन्यथा कर्तु समर्थः स ईश्वरः" अर्थात् – 'करने योग्य, न करने योग्य, विपरीत कार्य करने में जो समर्थ है वही ईश्वर है।' "अघटितघटना परीयसी" अलौकिक घटनाएं घटाने वाले परमात्मा कनकभवन विहारी प्रभु क्या नहीं कर सकते। जो जगत को बनाता है वह भक्तों के भावानुकूल अनेक चमत्कार भी दिखाता है जिनको देख सुनकर तुच्छ बुद्धि के लोग समझ ही नहीं पाते। परन्तु, 'वह' है और ध्रुव सत्य है–परमात्मा और उनकी शक्ति।

दूर के अमेरिका आदि देशों से रेडियो द्वारा तत्काल यहां पर शब्द आ जाता है। बीच में कितने समुद्र हैं न तार है न खम्बे ही वहां तक लगे हैं, कैसे वहां की बातें यहां सब सुनते हैं यह बात ग्राम के एक मूर्ख की समझ में जैसे नहीं आती वैसे ही जिनको कोई प्रभु का अलौकिक चमत्कार देखने में नहीं आया वे लोग उसे नहीं समझ पाते। मूर्ख–ग्रामीण की समझ पर एक रेडियो का विज्ञानवेत्ता जैसे हँसता है वैसे ही जिन्हें प्रभु का चमत्कार दिखाई दे चुका है वह भक्त भी उस अविश्वासी नास्तिक पर हँसते हैं।

इसलिए भक्तों की यह यूनिवर्सिटी अलग है। इसमें पास होकर जो सच्चा भक्त निकलता है वही प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन–स्पर्श प्राप्त करता है। अन्यथा, 'कामिनी कांचन' के चक्कर की परीक्षा में पड़कर अधिकांश फेल हो जाते हैं। परन्तु, जो फेल होते हैं वह भी भक्तिमार्ग में "अनेकजन्मसंसिद्धि" के अनुसार फिर भक्ति करते हैं। अन्त में भगवान स्वयं उनका उद्धार करते हैं "तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्" इसलिए भक्तिमार्ग का फल ही प्रभु का दर्शन आदि चमत्कार है, इसको अतिशयोक्ति कहना ही नासमझी है। तुलसीदास को चित्रकूट में भगवान के दर्शन हुये थे। मीरा को गिरिधर गोपाल मिले थे। अब कोई मीरा जी से कहता है कि– "भगवान का दर्शन किसी को हो ही नहीं सकता, वे निराकार हैं।" तो मीरा जी उसे क्या समझातीं?

***

अध्याय 2

मंदिरों की आवश्यकता एवं लाभ

सृष्टि रचना

सृष्टिरचना के समय ईश्वर ने भारत–भूमि को ही सर्वोत्तमता से रचा था। सर्वप्रथम यहां ही मनुष्यों की सृष्टि हुई। वेदों में तथा उपनिषदों में इसका प्रमाण मिलता है। "ब्राह्मणो मुखमासीद्वाहूराजन्यः कृतः" अर्थात्–ईश्वर के मुख से ब्राह्मणों की तथा भुजाओं से क्षत्रियों की उत्पत्ति हुई। भारतवर्ष ही में सर्वप्रथम वेद–वेदांग प्रकट हुये और उनका मनन कर मुनिजन विद्वान हुये। वेदवर्णित योग, उपासना आदि साधन कर महर्षिगण सर्वज्ञ हुए, सर्वशक्तिसम्पन्न हुए। फिर महर्षियों ने सर्वोपकारी ग्रन्थों का निर्माण किया। न्याय, दर्शन आदि तथा कर्मकाण्ड का ज्ञान प्राप्त कर मुनष्यों ने कर्म–अकर्म का भेद समझा और शुभाचरणों द्वारा उन्नति–पथ की ओर अग्रसर हुए।

भारतवर्ष में करोड़ों महर्षि ऐसे प्रतापी हो चुके हैं कि जो अपने तपोबल से सूर्य की गति रोकने में और समुद्र को एक क्षण में सुखा डालने की क्षमता रखते थे। भारतवर्ष ज्ञान–विज्ञान का भण्डार सदा ही रहा। पहले अन्य समस्त विदेशी राष्ट्र भारत को अपना गुरू मानते थे। यहाँ की योगविद्या महर्षि पतंजलि के बहुत पहले से विद्यमान थी। कबीर, गोरख ज्ञानदेव आदि जैसे सैकड़ों सिद्ध योगी भारत में विद्यमान थे। शूर–वीरता में तो भारत देवताओं से भी बढ़ा–चढ़ा था। काकुत्स्य, मुचकुन्द, दशरथ आदि राजा देवताओं की सहायता करने चन्द्रलोक जाया करते थे। यह चन्द्रलोक ही स्वर्ग है। पृथ्वी से बड़ा चन्द्रमा है। जैसे पृथ्वी पर बड़े–बड़े देश बसे हैं, वैसे ही चन्द्रलोक में बड़े–बड़े दिव्य नगर बसे हैं। वर्णन मिलता है कि रावण आदि ने चन्द्रलोक में जाकर देवताओं को जीत लिया था। आज के वैज्ञानिक चन्द्रलोक जाने का स्वप्न देख रहे हैं पर सफलता तो भविष्य जाने। पर यहाँ के लोग बहुत पहले ही चन्द्र लोक जा चुके हैं, रावण ही नहीं महाराजा दशरथ जी भी जाया करते थे। केकई के दो वरदान तो स्वर्ग के युद्ध में ही दिये गये थे। जब दैत्यों से युद्ध करते समय दशरथजी के रथ का पहिया गिरने लगा तो केकई ने उसे संभाला था। तब दो वरदान केकई को दिये गये थे। उन्हीं वरदानों के कारण भगवान को वनवास हुआ। यह तो त्रेता की बात है। अभी द्वापर में 5 हजार वर्ष पहले भी अर्जुन का चन्द्रलोक में जाने का वर्णन है। वहीं पर उर्वशी ने उनको शाप दिया था जिसके फलस्वरूप अर्जुन को विराट नगर में बृहन्नला बनकर रहना पड़ा था।

इसी भारतवर्ष में ही ईश्वर नें कई बार अवतार लिया। उन सभी अवतारों में भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम का अवतार सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अन्य देशों में ईश्वर के पुत्र ने भले ही अवतार लिया हो पर ईश्वर का अवतार नहीं हुआ। अन्य देशों ने इसी कलियुग में थोड़े दिनों से कल–कारखानों की उन्नति की है पर योगविद्या–मंत्रविद्या में भारत भी आज सबका शिरोमणि है।

भक्तियोग

सर्वज्ञ महर्षियों ने कलियुग में मनकी पूर्ण स्थिरता न होने के कारण भक्तियोग को ग्रहण करने की आज्ञा दी है। अन्य योगों की अपेक्षा यह सुगम है। साथ ही इस योग से मुक्ति के अतिरिक्त सभी सिद्धियां भी प्राप्त होती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भक्तियोग की सिद्धि से ही मृतक क़ो जिला दिया था–दिल्ली का किला ढहा दिया था। मीरा ने भक्तियोग के बल से ही जहर को अमृत बना दिया था। नरसी, नामदेव आदि ने भक्तियोग के बल से सैकड़ों चमत्कार दिखाये थे। इस समय तक भी हजारों भक्त ऐसे और विद्यमान हैं।

मन्दिरों की आवश्यकता

भक्तियोग में नामकीर्तन कथाश्रवण के अतिरिक्त प्रधान रूप से मूर्तिपूजा है। मूर्तिपूजा से प्रभु में शीघ्र तन्मयता होती है। कारण कि सुन्दर रूप सामने होता है–रूप में प्रेमासक्ति उत्पन्न होती है। मीरा, नरसी आदि मूर्तिपूजा करके ही प्रभु को प्रकट कर सके थे। मूर्तिपूजा के लिए मन्दिरों की आवश्यकता होती है। इस उपासना के लिये ही भारत में प्राचीन काल से मन्दिरों की परिपाटी प्रचलित है। इससे जनता को महान लाभ होता आया है। सदाचार की ओर प्रवृत्ति होती है। सन्ध्या समय या प्रातःकाल मन्दिरों में जाकर भगवान् का दर्शन करना और कथा–कीर्तन सुनना ह्रदय को शान्ति देता है।

मन्दिरों से लाभ

बद्रीनाथ का एक छोटा सा मन्दिर उत्तराखंड में है। उसके दर्शनार्थ प्रतिवर्ष लाखों यात्री अनादि काल से जाते हैं। जाते समय मार्ग में उन यात्रियों द्वारा महान तप हो जाता है। पवित्र भाव, श्रद्धा आदि उदय होते हैं। उस यात्रा में मैंने स्वयं अनुभव किया है कि मनुष्य का मन यहाँ स्वच्छ होता है। ऐसे ही जगन्नाथपुरी की यात्रा पूर्व में है। उस यात्रा में जब ट्रेन नहीं थी तब से हजारों वर्षों से लाखों यात्री प्रतिवर्ष जाते और तप करते थे। कबीर ने लिखा है–"कोस कोस पर पहरा बैठा चार कोस पर चट्टी। चलते चलते पाँय पिराने देह हो गई मिट्टी। ठाकुर भले विराजे जी उड़ीसा जगन्नाथपुरी।" अब तो लोग ट्रेन में जाते हैं। पहले हजारों कोस पैदल

चलकर जाते थे और दण्डवत् लगाते जाते थे। उनका शुद्ध भाव बनता था। सदाचार एवं पूर्ण तप होता था। ऐसे ही द्वारका में प्रतिवर्ष लाखों भक्त जाते हैं। वहाँ क्या है? मन्दिर ही तो है। ऐसे ही रामेश्वरम् मन्दिर के दर्शनार्थ दक्षिण में लाखों यात्री जाते हैं। प्राचीन काल से अब तक लोग हिमालय–गंगोत्री से जल भरकर रामेश्वरम् को ले जाते हैं। उनका कितना तप होता है? इसी प्रकार देश में हजारों लाखों मन्दिर और भी हैं जो अनादि काल से जनता को लाभ पहुंचाते आ रहे हैं। वैद्यनाथ धाम में प्राचीन काल से अब तक भक्तों को मनोकामना–सिद्धि से बड़े–बड़े अनुभव प्राप्त होते रहे हैं। शिवाजी ने समर्थ रामदासजी की कृपा से विजय प्राप्त की थी। वे समर्थ, श्री रामदास जी के मन्दिर में उपासना करते थे। मन्दिर में ही शिवाजी को प्रत्यक्ष प्रकट हो देवी ने तलवार दी थी, उसी से उनकी ताकत बढ़ी थी। नामदेवजी भी मन्दिर के उपासक थे। मन्दिर का द्वार उन्होंने घुमा दिया था जो अब तक पंढरपुर में देख सकते हैं। वृन्दावन में कितने भक्त मन्दिरों के दर्शनार्थ जाते रहे। उनको कितना लाभ हुआ, यह वर्णन से बाहर की बात है। औरंगजेब, बाबर आदि यवनों ने यही सोचकर कि हिन्दू जनता को मन्दिरों से बहुत लाभ है और यदि मन्दिर बने रहे तो इनका कुछ नहीं बिगड़ेगा, इसलिए मन्दिरों को तोड़ देना चाहिए, लाखों मन्दिर तोड़ डाले, पर जब वृन्दावन में गोविन्द जी के मन्दिर को तोड़ने लगे तो (मन्दिर के सामने जो हनुमानजी का मन्दिर आज भी वर्तमान है) हनुमान जी ने प्रकट होकर किलकारी मारी। समस्त यवनों की सेना–जो मन्दिर पर चढ़कर मन्दिर तोड़ रही थी–बेहोश हो–होकर गिर पड़ी। बहुत से मरे, बहुत से भागे जान बचाकर यह चिल्लाते हुए कि हिन्दुओं का देवता प्रकट हो गया। गोविन्दजी का मन्दिर आधा ही टूटा रह गया। फिर यवन नहीं तोड़ सके–हनुमानजी ने उसे बचा लिया। इसी प्रकार देश भर में बड़े–बड़े चमत्कारयुक्त मन्दिर हैं जिनका वर्णन एक स्वतन्त्र ग्रंथ में हो सकता है। यहाँ पर इस छोटी सी भूमिका में केवल इतना ही लिखना था कि मन्दिरों से भक्तों को महान लाभ होता आया है।

ये मन्दिर हमारे प्राचीन गौरव की स्मृति कराते हैं। मन्दिरों में देवता भी प्रत्यक्ष रहते हैं, जो समय–समय पर अपने परिचय देते हैं। कहीं–कहीं मन्दिरों में कोई दुष्ट पुजारी आ घुसा और उसने दुराचार किया तो इसका यह मतलब नहीं कि सभी मन्दिर ऐसे ही होते हैं। पापी पुजारी को हटाना चाहिए, न कि सब पुजारी ऐसे होते हैं। मन्दिरों का क्या दोष है? जैसे राजनैतिक कोई नेता घूसखोर है और दुराचारी है तो उस नेता का व्यक्तिगत दोष है–न कि संस्था खराब है। सारी संस्था को ही गाली देना, संस्था को ही तोड़ देने को कहना मूर्खता है। ऐसे ही मन्दिर भी सदाचार की उन्नति के लिए प्राचीन गौरव की रक्षा के लिए ही बनाये जाते हैं।

***

अध्याय 3

अयोध्या

भूमि पर अयोध्या

वाल्मीकि–रामायण में बालकाण्ड 5वां सर्ग छठे श्लोक में वर्णन है कि–"मनुना मानवेन्द्रेण सा पुरी निर्मिता स्वयम्।" अर्थात्–मनुष्यों के इन्द्र श्री मनुजी ने श्रीअयोध्यापुरी स्वयं बनाई थी। स्कन्दपुराण में वर्णन है कि अयोध्यापुरी भगवान के चक्र पर बसी हुई है और–"श्रीरामधनुषाग्रस्था अयोध्या सा महापुरी" अर्थात्–भगवान श्रीरामजी ने धनुष के अग्रभाग से उसको स्थायी रूप से रक्षित किया है। वह भूमि प्रलय में भी नष्ट होती, ऐसा ही वर्णन है। और अयोध्या शब्द का रहस्य भी बतलाया है कि–

"अकारो ब्रह्म च प्रोक्तं यकारो विष्णुरुच्यते।
धकारो रुद्ररूपश्च अयोध्या नाम राजते।।
सर्वोपातकर्युक्तैर्ब्रह्महत्यादिपातकैः ।
न योध्या शक्यते यस्मात्तामयोध्यां ततो विदुः।।
('स्कन्दपुराण')

अर्थात्–'अ' कार ब्रह्मा है और 'य' कार विष्णु है तथा 'ध' कार शिवरूप है। इस प्रकार अयोध्या के नाम में ब्रह्मा–विष्णु–महेश तीनों का निवास है। समस्त छोटे–बड़े पाप सब इकट्ठे होकर ब्रह्महत्या के साथ आ जायें और यदि अयोध्या नाम के महात्म्य से युद्ध करने लगें तो वे भी पराजित हो जायेंगे। इसलिए भी इस तीर्थ का नाम अयोध्या महर्षिगण कहते हैं।

सप्तपुरियों में प्रथमपुरी अयोध्या मानी गयी है। इक्ष्वाकु से लेकर भगवान् श्रीरामचन्द्र तक सभी चक्रवर्ती नरेशों ने अयोध्या के राजसिंहासन को विभूषित किया था। भगवान् के अवतार लेने पर तो अयोध्या साक्षात् साकेत बन गयी थी। जैसे राजा कहीं वनप्रदेश में जाता है तो उस वनप्रदेश में भी राज्य के कर्मचारीगण समस्त वैभव ले जाकर राजा के रहने योग्य व्यवस्था करते हैं वैसे ही अयोध्या में प्रभु के आने पर वहां का संमस्त वैभव प्रकट हुआ था। बिना ऋतु के भी वृक्ष फूल फल देते थे। जैसे भारद्वाज ऋषि ने अपने वन के भीतर समस्त स्वर्ग का सामान क्षणमात्र में प्रकट कर लिया था वैसे ही प्रभु की इच्छा से अयोध्या में साकेत का कनकभवन आया था। कहा जाता है कि वैवस्वत मनु सूर्य भगवान के पुत्र थे। उन्होंने भगवान की आराधना की थी तो भगवान् ने उन्हें अपनी राजधानी बनाने के लिए अयोध्या की भूमि दी। भगवान् ने बताया कि यह अयोध्या की भूमि अनादि है– यह प्रलय में भी मेरी इच्छा से नष्ट नहीं होती। इस अक्षय अविनाशी भूमि पर ही राजधानी बनाओ। इस स्थान का दिव्य प्रभाव है। इस स्थान के दर्शन मात्र से पाप भाग जाते हैं अतः यहां पर राजधानी बनाओ। यहां पर कोई भी राजा तुम्हें युद्ध में जीत नहीं सकेगा।

भगवान् की आज्ञा से वहां पर मनुजी ने नगरी बसा कर राजधानी बनाई। तब से सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, चारों युगों में अयोध्या अपनी अमर कीर्ति विस्तार करती हुई चली आ रही है। जब तक अयोध्या में राजधानी रही तब तक वही राजा चक्रवर्ती होता रहा और जब

से अयोध्या से राजधानी हटी तब से देश छिन्न–भिन्न होने लगा।

अयोध्या का महात्म्य वेद–शास्त्रों में खूब वर्णन है। अयोध्या को समस्त विश्व का मस्तक वेदों में बताया गया है। इस अयोध्या का पालन मनु से लेकर समस्त सूर्यवंशी राजा करते रहे। जब श्री दशरथजी महाराज का जन्म हुआ और उन्होंने जब यज्ञों के द्वारा आराधना करके प्रभु को प्रसन्न किया तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के सम्राट पूर्णब्रह्म प्रभु श्रीरामजी ने प्रकट होकर इसी अयोध्या की भूमि पर अपने मंगलमय चरणकमलों से विचरण कर विश्व को आनन्द प्रदान किया। यों तो अम्बरीष जैसे भक्त राजा और रघु जैसे प्रतापी, दिलीप व भगीरथ से तपस्वी आदि सहस्त्रों प्रातः स्मरणीय राजा इस अयोध्या में हुए जिनकी कीर्ति विश्व में विख्यात है। परन्तु जब भगवान् श्रीराम जी प्रकट हुये तो समस्त दिव्य साकेतधाम का वैभव और चमत्कार अयोध्या भूमि पर उतर अया। भगवान की क्रीड़ास्थली बनकर अयोध्या ने भगवान की बाललीला तथा किशोर लीला एवं राज्याभिषेक के पश्चात् प्रभु की सभी लीलाओं का दर्शन प्राप्त किया। इसलिये अयोध्या की महिमा अपार है। अयोध्या में रहकर कोई भजन न भी करे तो भी उसको परम गति प्राप्त होती है। पूज्य आचार्य श्री रामवल्लभाशरण जी ने लिखा है कि–

"मुख से न लेवे नाम राम को तऊ है नीको,
कान में तो रामधुनि आप कहीं से आवैगी।
पुनि धुनि हिय में समाय जाय तेरे ऐसी,
रोम रोम हूँ से अघ हेरि के नसावेगी।
प्रीतम की प्रिय प्रीति नेम हेम क्षेम दुति,
अंग अंग उमंगि सुरंग वरसावैगी।
चरन सरन 'रामवल्लभा' अहरनिसि,
औध के रहे ते सर्व भांति वनि जावैगी।।"

इस अयोध्या धाम का प्रभाव तभी कुछ समझ में आता है जब भगवान् ह्रदय में विराजमान हो जायं। क्योंकि–

"अवध प्रभाव जान तब प्राणी। जब उर बसैं राम धनु पाणी।।
चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजे तन नहीं संसारा।।

इस अयोध्या का वास जिन्हें प्राप्त हो जाय उनका तो कहना ही क्या है। अयोध्या का तो ध्यान ही करने से मुक्ति प्राप्त होती है और यदि केवल अयोध्या अयोध्या नाम ही जपे तो भी पाप नष्ट हो जाते हैं।

"अवध पुरिन की अवधि यही श्रुति अरु स्मृति वरनी।
ध्यान धरे गति करनि, नाम उचरत अघ हरनी।।"

इस दिव्य धाम का महात्म्य अनन्त है। इसलिये इसका सेवन करना ही मुमुक्षु का कर्त्तव्य है। जो अयोध्या का आश्रय लेकर यहां रहने लग जाय वही प्रभुकृपा का पूर्ण अधिकारी बन जायेगा। जैसे तैसे कैसे भी यहां रहो।

"अवध झलक जो जन लख, भूलै सब संसार।
जल थल चर सब भक्तिमय, भक्ति भरे भंडार।।"

अवधपुरी सम नहिं पुरी, सरयू सम सरि नाहिं।
कनकभवन सम भवन नहिं, सकल भुवन के माहिं।।

वेद और उपनिषदों में श्री अयोध्या धाम का अनुपम रहस्य वर्णन है। अयोध्या को विश्व का मस्तक कहा गया है। यहां पर समस्त ब्रह्माण्डों के अधिनायक परात्पर पूर्णब्रह्म–श्रीराम जी का अवतार होने के कारण दिव्य प्रभाव भरा हुआ है। इस धाम का सात्विक प्रकाश प्रेमी मर्मज्ञ प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

इस अयोध्या धाम में भी सर्वश्रेष्ठ अन्तरंग, महामहिमामय, मुनीश्वरों के ध्यान की वस्तु भगवान का निज महल श्री कनकभवन है। इस भवन में साक्षात् प्रभु अपने प्रिय परिकर के साथ सर्वदा दिव्य रूप से विराजमान रहते है। श्री कनकभवन में अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों की स्वामिनी श्री सीताजी की दिव्य कृपामयी विभूति प्रत्यक्ष प्रकट है। इन दोनों युगल सरकारों की अनुपम माधुर्यमयी बाँकी झाँकी विश्व के समस्त भक्तों को आनन्द प्रदान करने के लिए ही अवतरित हुई है।

जब कोई यात्री तीर्थभ्रमण करता हुआ अयोध्या में आता है और सब मन्दिरों के दर्शन करता हुआ जिस समय 'कनकभवन' में पहुँचता है तो उसको समस्त तीर्थों का फल यहीं पर मिलता है। जब वह भगवान श्री कनकभवन विहारी के दर्शन करता है तो वह भगवान की दिव्य छवि देखकर सुध–बुध भूल जाता है। उसे फिर अन्य तीर्थों में जाने की आकाँक्षा नहीं रहती। भगवान की दिव्य झाँकी ही ऐसी विलक्षण है कि दर्शन करते ही दिव्य साक्षात्कार का आनन्द प्राप्त होता है। कितने ही यात्री तो ऐसा कहते मिले कि– कनकभवन में पहुंचते ही ऐसा लगा कि श्रीराम लीला के स्वरूप श्रृंगार करके बैठे हैं। बहुतों को प्रथम ऐसा भासित हुआ कि मूर्ति नहीं है, कोई राजकुमार और राजकुमारी बैठे हैं।

उन अखिल ब्रह्माण्डनायक प्रभु ने मानो कलियुग में भक्तों को दर्शनानंद देने के लिये ही इस कनकभवन में पुनः अवतार धारण किया है। उस रूपमाधुरी का पान करते–करते नेत्र तृप्त ही नहीं होते। अनेकों भक्तों की अभिलषित वस्तुयें देना तथा जो कोई कुछ मानता मांगी जाये और प्रार्थना की जाय कि–हमारा अमुक कार्य पूर्ण हो जाय तो वह सब कार्य तो आप कल्पवृक्ष की भांति निरन्तर पूरे करते ही रहते हैं। ऐसे सैकड़ों चमत्कार भक्त लोग निरन्तर देखते ही रहते हैं परन्तु सबसे बड़ी विशेषता तो आपकी लोकोत्तर विलक्षण रूप–माधुरी ही है। उस रूप–माधुरी का पान लाखों भक्तों के नेत्र करते रहते हैं। वह आनन्द तो अनुराग–रस के रसिकों को विशेष मिलता है।

ऐसे प्रभु श्री कनकभवन विहारी की महिमा तथा उनको कलियुग में कैसे–कैसे भक्तजन लाये हैं। यह जानकर भक्तों को और भी अधिक अनुराग बढ़ेगा। इसी दृष्टिकोण से भक्तों की इच्छा हुई कि उनके चरित्रों का विस्तार से वर्णन किया जाय। अतः अब आप कनकभवन का प्राचीन वृत्तान्त हृदयंगम करें। पश्चात् उनकी महिमा का वर्णन किया जायेगा।

दिव्य अयोध्या–साकेत का रहस्य

दिव्य अयोध्या (साकेत लोक) इस समस्त ब्रह्म–जीवमय जड़चेतन प्रकृतिमंडल से परे है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का संचालन उसी धाम से होता है। विश्व की सीमा के प्रथम भाग

में महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, कुमारलोक, उमालोक, शिवलोक आदि हैं इन लोक–रचनाओं के ऊपर पंचतत्व महत्व और अंहकार इन सातों के सप्त आवरण हैं। इनके ऊपर कार्यकरण का अभिमान रखने वाले जीवों का वैष्णव लोक है जिसमें सहस्त्रमस्तक, सहस्त्रनेत्र ओर सहस्त्रचरणों वाले भगवान विष्णु का निवास है। उन महाविष्णु के निमेष मात्र से सृष्टि बनती बिगड़ती है। उन महाविष्णु से कार्य संचालक विधि हरि–हर उत्पन्न होते है। इसके ऊपर महाप्रकाशमय वासुदेवलोक है जिसमें चतुर्व्यूह सहित वासुदेव भगवान रहते हैं। इन सबके ऊपर गोलोक है। वह ज्योति स्वरूप सनातन है। उस लोक के ऊपर मध्य में साकेतधाम विराजमान है। साकेत के चारों ओर सप्त आवरण है। उन आवरणों में ही अन्य प्रधान अवतारों की स्थिति है। साकेतधाम दिव्य चिन्मय विचित्र श्रृंगारमय है। उसकी शोभा समस्त लोकों से श्रेष्ठ है। वह वर्णनातीत है। उसी धाम के मध्य में रत्नमणि मंडित दिव्य कनकभवन है। उसमें परात्पर ब्रह्म श्रीरामचन्द्र अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीसीताजी के सहित स्वपरिकरों के साथ स्वच्छन्द आनन्दमय लीला विहार करते रहते हैं। वेदों में अयोध्या का रहस्य वर्णन है कि–

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्याँ हिरण्यमः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

'अथर्ववेद' 10,2,31।

अर्थात्–समस्त देवताओं की पूज्य वह अयोध्या सर्वलोकों से श्रेष्ठ है। उसके मध्य में कनकमय भवन है जो स्वर्ग से करोड़ों गुना सुन्दर और प्रकाशमान रंगीन किरणों से आवृत है। उसमें आठ चक्र हैं जैसे कमल के दल होते हैं और उसमें नवद्वार हैं। जो नवीन प्रकार के हैं।

बरेप्या सर्व लोकानं हिरण्मय चिन्मया जया।
अयोध्या नन्दिनी सत्या राजिता अपराजिता।।
कल्याणी राजधानी या त्रिपादस्य निराश्रया।
गोलोकह्रदयस्था च संस्था सा साकेतपुरी।।

अर्थात्–"सर्वलोकों की पूज्या वह साकेतपुरी हिरण्मय (कनकमय बनी हुई है) चिन्मय (प्रकाशमय) है वह (जया) विजयलक्ष्मी सदृश है। वही अयोध्या कही जाती है और नंदिनी (आनन्द देनेवाली) है। उसको सत्या भी कहते हैं। राजिता (सुन्दर शोभामयी) अपराजिता (जो कभी जीती नहीं गयी) वह कल्याणमयी राजधानी त्रिपाद विभूति से परे है और गोलोक के ह्रदय में स्थित है, वही साकेत है।"

उस दिव्य अयोध्या (साकेत) में बड़े–बड़े महर्षि भी नहीं जा सकते। देवता तथा ऋषिगण उसकी आकांक्षा करते हैं। उस धाम में तो श्री सीताराम जी के अन्तरंग प्रेमी की कृपा के अवलम्ब से पहुंचते हैं।

***

अध्याय 4

कनकभवन का महत्त्व

दिव्य अयोध्या का कनकभवन

साकेत के अन्तर्गत मध्य भाग में जो विचित्र प्रभु का राजमंदिर है वही कनकभवन कहा जाता है। वही श्री सीताराम जी का रंगमहल–विहारभवन है। इस कनकभवन के मध्य में सर्व सुखद कल्पवृक्ष है जिसके नीचे परम दिव्य मणिमंडप है। उसके मध्य में प्रकाशमान रत्नसिंहासन है। करोड़ों चन्द्रमाओं के सदृश वह सिंहासन रत्न हारों से मंडित है। मंडप में मुक्ता मालाओं के वितान तने हुये हैं। उसमें सहस्त्रदल का एक कमल है जो विचित्र कर्णिकाओं से सुशोभित है। प्रत्येक कर्णिका में मुद्रायें हैं। पहिली सूर्यमुद्रा, दूसरी अग्निमुद्रा, तीसरी चन्द्रमुद्रा। इन मुद्राओं से वह कमल सुहावना लगता है। उसके मध्य में सर्वकारण रूप विन्दु विराजमान है। उसके मध्य में उस राजसिंहासन पर सर्वशक्तियों से नमस्कृत श्रीसीताजी को वामांक में धारण किये हुए प्रेम–प्रमोद से प्रसन्न मुद्रा में प्रभु श्री रामचन्द्र जी विराजते हैं। उस समय विचार आता है कि जगत में किसी से प्रेम करना व्यर्थ है क्योंकि सब ही थोड़े दिनों के साथी हैं। तब सदा अचल अमर रहने वाले ईश्वर की ओर मन जाता है। उस ईश्वर का यदि निराकार शून्य रूप हो तो उसपर भी मन नहीं टिकता। इसीलिए वह परमप्रभु सगुण साकार सुन्दर राजकुमार रूप में प्रकट हुए थे। उन परब्रह्म श्रीराम के सुन्दर रूप का दर्शन करते ही पापी का भी दुःख दूर हो जाता है।

एक बड़े नेता ने मुझे बताया था कि उनका जब इकलौता लड़का मर गया तो उनको इतना दुःख हुआ कि वे डूब मरने को उद्यत हो गये किन्तु एक मंदिर में उसी दिन लाउडस्पीकर लगाकर 'रामायण' का अखण्ड पाठ हो रहा था। वे चारपाई पर लेटे–लेटे रामायण सुनने लगे। जीवन भर कभी रामायण उन्होंने नहीं पढ़ी थी। उस दिन रामायण से उनको कुछ शान्ति मिली। दूसरे दिन वे रामायण खरीद लाये, पढ़ने लगे। उनका दुःख दूर हो गया। वे अब श्रीराम के अनन्य भक्त हैं। इसलिए सच्ची शान्ति दूसरों को चतुरता से धोखा देने में नहीं है। धन कमाकर धरने में नहीं, दुराचार में, विषयों में नहीं, बड़े मकान बनाने में और यश कमाने में नहीं है। सच्ची शान्ति तो इस सबसे अनासक्त होकर सच्चिदानन्द प्रभु के रूप में आसक्त होने में ही है।

कनकभवन की विशेषतायें

(प्राचीन संकलित श्लोक)

धन्या चेयं रघुकुल रामकोटं च धन्यम्।
तत्रापि श्री कनकभवनं रामसीतादिहारम्।।1।।

श्री कनकभवन महिमा

अर्थात्–"श्री अयोध्यापुरी समस्त विश्व में भी धन्य है, उसमें भी रामकोट धन्य है। उस रामकोट में कनकभवन धन्य है–जहाँ पर श्री सीताराम जी की विहारभूमि है।"

तत्रापि श्रीसहितमधुरा दिव्यलावण्यमूर्ति।
स्तत्रापि श्रीमुखमधुरिमावर्तकी नर्तकी नः।।2।।

अर्थात्–"कनकभवन में भी श्री सीताराम जी की जो दिव्य–मधुर–लावण्यमयी मूर्ति है उन मूर्तियों की जो मुखचन्द्र कान्ति सौन्दर्य छटा लहराती हुई नृत्य कर रही है वही हमारा प्रिय करने वाली है।"

नहि पुनर्जननोस्तनचोषणां भवति वा न च गर्भनिवासिता।
यमपुरे गमनं न कदापि वै, कनकमंदिरमेव प्रपश्यताम्।।3।।

अर्थात्–"फिर उसे जन्म लेकर माता के स्तन चूसना नहीं पड़ेगा और न फिर गर्भ का निवास करके दुःख सहना पड़ेगा एवं न फिर उसे यमलोक ही जाना पड़ेगा–जो कि कनकभवनविहारी का दर्शन कर लेगा।"

सकलदुरितनाशो दिव्यतत्वप्रकाशः
परमपदनिवासो वासनावर्गनाशः
प्रियसहितनिवासो गुप्तसौभाग्यभासः
कनकभवनमेतं चाश्रितांग जनानाम्।।4।।

अर्थात्–"जो कनकभवन का आश्रय लेकर अयोध्या में रहते हैं उनके समस्त पापों का नाश हो जाता है तथा दिव्य तत्व का प्रकाश होता है। उनकी वासनाओं का समूल नाश होकर परमधाम साकेत निश्चय ही प्राप्त होता है, जहाँ पर प्रिय प्रभु के साथ सर्वदा निवास प्राप्त होकर गुप्त लीलाओं में सेवा का सौभाग्य मिलता है।"

कनकमंदिरपार्श्वनिवासनस्तृणलतांकुरपक्षिद्रु मादयः।
परगति गमयन्ति विलोकिता प्रियपदाब्जरजः परिभावित।।5।।

अर्थात्–"कनकभवन के आसपास के बसने वाले वृक्ष, पक्षी, लतायें, अंकुर, तृण आदि भी परम गति को प्राप्त होते हैं क्योंकि वे सब प्रिया प्रियतम के चरणरज के स्पर्श से कृतार्थ हैं। और जो भक्त उन वृक्ष, लता आदि का शुद्ध भाव से दर्शन करते हैं, वे भी परम गति को प्राप्त होते हैं।"

अभयभूतिगता जड़चेतना, सुखमहो निवसन्ति तु यत्र वै।
रघुपतिर्न जहाति कदापि यत, कनकमंदिरमत्रकिमुच्यये।।6।।

अर्थात्–"जहाँ पर जड़ और चैतन्य सभी बधाओं से मुक्त अभय विभूति प्राप्त कर सुखपूर्वक निवास करते हैं, और जिसको श्रीराम जी कभी नहीं त्यागते उस कनकभवन का क्या कहना है।"

श्री कनकभवन महिमा

कनकमंदिरमत्र विलोक्य वै, निजपुरं प्रतियान्तिमथो नरम्।
यदि विलोकयतेस्यतिपातकी, यमपुरं प्रति सोऽपि न गच्छति।।7।।

अर्थात्—"कनकभवनविहारी का दर्शन करके जो यात्री अपने ग्राम को लौट रहा हो उस मनुष्य का दर्शन यदि घोर पातकी भी करले तो वह भी फिर यमपुर को नहीं जाता है।"

कनकभवनमनादिहरेस्थलम्
हरिमपि प्रददाति सुसेवितम्।
सुखमनन्तमृषीश्वरयाचितम्
सुगममेव करोति सृदुर्गमम्।।4।।

अर्थात्—"यह कनकभवन भगवान का अनादि स्थल है। इसकी सुन्दर प्रकार से सेवा की जाये तो यह भगवान को भी प्रदान कर सकता है और सुख जो अनन्त महर्षिगण याचना करते हुए भी नहीं पाते हैं, इस दुर्लभ सुख को भी यह सुलभ करके दे देता है।"

कनकभवनमेतद्दिव्यरूपं प्रदत्तै,
कनकभवन मेतद्ध्यानरूपं प्रदत्तै।
कनकभवनमेतद्गौररूपं प्रदत्तै
कनकभवनमेतद्रामभूप प्रदत्ते।।4।।

अर्थात्—"यह कनकभवन सेवा करने पर अपना दिव्य स्वरूप प्रदान करता है, और यह कनकभवन ध्यान करने योग्य दिव्य धाम में सेवा के योग्य रूप प्रदान करता है। यह कनकभवन गौरांगी श्री सीता जी का रूप दर्शन कराता है तथा यह 'कनकभवन' साक्षात् श्री राजाराम जी को भी मिला देता है।"

सललनां हरिमाशु विलोकितुं
कृतश्रमैर्नच सार्थकसाधनैः।
थकितसाधुजनैः प्रियलब्धये
कनकभवनमिदं परिसेव्यताम्।।

अर्थात्—जो संतजन श्री सीताराम जी का साक्षात्कार करने के लिये साधन करते करते थक गये हों और प्रभु न मिलें हों उन निराश साधुओं और भक्तों को अपनी प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिये इस कनकभवन का मन लगाकर सेवा करना चाहिए।

(श्री जानकीगीत का पद प्राचीन संस्कृतविहागराग संकलित)

जनकसुतासहितं रघुराजम्। अधिसिंहासनमतिसुखामाजम्।।
कापि नीराजयति परा। मणिदीपावलि ललितकरा।।
काचनमृदुवादयति मृदंगम्। झल्लरिकामपि कापि सुरंगम्।।
उदयति भूषणनिकरमरीची। लसति सखीषु च कातुकवीची।।
हरिवचनं सरसीकृत रामम्। कुरुत वुधा ह्रदये दिनकामम्।।

अर्थात्–कनकभवन के मध्य में सिंहासन पर अत्यन्त अमोदप्रमोद में मग्न श्री जनकराजकिशोरी जू के साथ श्री कौशलराजकुमार विराजमान हैं। कोई सखी मणिमय दीपावली को ललित करकमलों में लेकर आरती कर रही है, कोई सखी मधुर स्वर से मृदंग बजा रही है, कोई झांझ बजा रही है, कोई सारंगी बजा रही है। श्री प्रिया प्रियतम के वस्त्राभूषण से दिव्य किरणों की तरंगे उठ रही हैं जिससे आंखों को कौतुकपूर्ण आनन्द प्राप्त हो रहा है। सखि के वचन से जो श्री राम जी सरस हो रहे हैं ऐसे श्री रामजी को हे बुद्धिमानों! अपने हृदय में धारण करो। इससे आपके हृदय की समस्त कामनाओं की समाप्ति हो जायेगी।

सच्ची शान्ति

लगभग 30 वर्षों की बात है। समस्त तीर्थों में भ्रमण करते हुये जब मैं (जयरामदेव) अयोध्या आया तो यहाँ कनकभवन में पहुँचकर मुझे अलौकिक शान्ति प्राप्त हुई। समस्त भारत में ऐसी आकर्षक सौन्दर्य– माधुर्य से परिपूर्ण मूर्ति मैंने कहीं नहीं देखी। मूर्ति में चमत्कार के साथ–साथ मैंने देखा कि समस्त अयोध्या के अन्य मन्दिरों के अधिष्ठाता तथा पुजारीगण भी कनकभवन में दर्शनार्थ दौड़ते चले आ रहे हैं। अनेक प्रसिद्ध महात्मागण भी कनकभवन में आकर श्रद्धा से प्रेमाश्रु बहाते हुए दर्शन कर रहे हैं। मनोहर तालस्वर सहित गान भी गायकों द्वारा हो रहा है। प्रबन्ध भी सेवा पूजा का इतना सुन्दर था कि जैसा अन्यत्र कहीं नहीं देखा। पुजारियों का आचरण भी पता लगाने पर सुन्दर निकला। सर्वत्र कनकभवन की प्रशंसा अयोध्या में सुनी। सभी लोग कहते हैं कि राज्य के हाथ में यदि प्रबन्ध न होता तो अब तक इस कनकभवन की सेवा जैसी हो रही है वह सब न होती। राज्य के द्वारा सुन्दर प्रबन्ध होने का ही परिणाम है कि मैंनेजर, मुन्शी, सिपाही, पुजारी आदि सब सावधानी से मन्दिर के कार्य करते हैं। गलती करने वाले को हटा दिया जाता है।

उसी समय से मेरे हृदय में कनकभवन के प्रति श्रद्धा हुई। मुझे जो कुछ लाभ हुआ, वर्णन नहीं किया जा सकता। तब से जब–जब मैं अयोध्या आया, मेरे हृदय में कनकभवन की महिमा लिखने की इच्छा होती रही। इस वर्ष जब मैं दशहरे पर वृन्दावन से आया तो 'कनकभवन' के मैंनेजर पं. श्री हरप्रसाद जी ने स्वयं कहा कि–"कनकभवन का चरित्र यदि आप लिखें तो बहुत सुन्दर हो।" मैंने इसे भगवान की प्रेरणा समझकर चरित्र लिखना प्रारम्भ किया। प्रभुकृपा से यहाँ के बड़े–बड़े सभी पूज्य महात्माओं ने इस भवन के इतिहास के सम्बन्ध में मुझे अनेक रहस्य समझाये। इस चरित्र के लिखने में मेरा सभी ने उत्साह बढ़ाया। समस्त अयोध्यावासी कनकभवन को अपने प्राणों से प्रिय पूज्य उपासना स्थल मानकर श्रद्धा करते हैं। बाहर से आने वाले विद्वानों ने भी मुझे बताया कि अयोध्या के कनकभवन में पहुंचने पर प्रभु का दर्शन करके ऐसा ही अनुभव होता है कि "सच्ची शान्ति" तो भगवान के अनुराग ही में है। कोई नास्तिक भले ही इस बात को न माने पर वह हृदय पर हाथ रख करके देखे कि जब उसका प्रिय पुत्र या प्रिय पत्नी

की सहसा मृत्यु होती है तो उसे दुःख होता है या नहीं? जब भयानक दुःख होता है तो सारा संसार अनित्य और सब कुछ दुःखमय मालूम होता है।

उस कनकभवन के अन्तःपुर में अनन्तसखियाँ युगल सरकार की सेवा में तत्पर रहती हैं। वे सखियाँ सच्चिदानन्दमयी, सौन्दर्यमयी और प्रेममयी हैं उनका तत्सुख सखित्व भाव है। प्रिया–प्रियतम को सेवा द्वारा प्रसन्न करके सुख देना ही उनको प्रिय है। उस धाम के वृक्ष, लता, पक्षी आदि सब सच्चिदानन्दमय हैं, नित्य हैं। वहाँ से किसी को फिर मृत्युलोक में नहीं आना पड़ता। वहाँ गये हुए भक्तों को फिर बारम्बार जन्म–मरण के चक्र में पड़कर रोग, शोक आदि भयंकर दुःख तथा नरक–यातनायें नहीं भोगनी पड़तीं। उस दिव्य धाम में अखण्ड, अनन्त अक्षय आनन्द भक्तों को प्राप्त होता है। नित्य–नवीन लीलाएं करके प्रिया–प्रियतम प्रेमियों को लीला–सुधा का तथा अपने सौन्दर्य–माधुर्यमय स्पर्शामृत का अचिन्त्य आनन्द प्रदान कराते रहते हैं।

सदाशिवसंहिता में वर्णन है कि–

"तस्य मध्ये पुरं दिव्यं साकेतमिति संज्ञकम्।
योषिद्रत्नमणिस्तम्भ प्रमदागणसेवितम्।।
तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्ष धरप्रदः।
तस्याधः परमं दिव्यं रत्नमण्डपमुत्तमम्।।
तन्मध्ये वेदिकारम्या स्वर्णरत्नविनिर्मिता।
तन्मध्ये च परं शुभ्रं रत्नसिंहासनं शुभम्।।
सहस्त्रारं महापद्मं कर्णिकायुक्तमुक्तमम्।
तन्मध्ये मुद्रिकाभिन्नं मुद्राद्वाभ्यां विभिन्नकम्।।
तत्रास्ते भगवान् रामः सर्वदेवशिरोमणिः।
सीतालिंगितवामांकं कामरूपं रसोत्सुकम्।।

इस प्रकार उस दिव्य अयोध्या (साकेत) के कनकभवन का ध्यान भगवान् शंकरजी करते हैं। उस धाम में भगवान् अपने आनन्द के लिए तथा धाम में विराजमान भक्तों के सुख के लिए लीलाएं करते हैं। किन्तु जब जगत में श्री सीताराम जी धराधाम पर अवस्थित अयोध्या में आते हैं तो वे लीलाएं बहिरंग जीवों का उद्धार करने तथा अनेक शिक्षाएं देने, पृथ्वी के भाररूप दुष्टों का दमन आदि कार्यों को करने के लिए होती है। अब आप पृथ्वी की अयोध्या का रहस्य भी समझ लें।

***

अध्याय 5

कनकभवन का इतिहास

(क) त्रेता का कनकभवन-

त्रेता में कनकभवन का निर्माण

त्रेतायुग में जब भगवान ने अवतार लिया और विश्वामित्रजी के यज्ञ का कार्य पूर्ण कराके अहिल्योद्धार करते हुए जब श्रीमिथिलापुरी में गये तो वहाँ पर जनक नगर देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जिस जनक–भवन में श्रीसीताजी रहती थीं वह सुन्दर भवन देखकर भगवान का मन मोहित हो गया।

जब धुनषयज्ञ की सभा में प्रभु ने धनुष भंग कर दिया और श्री जनकनंदिनीजी ने जब जयमाल प्रभु के गले में पहना दी जब उसी रात्रि को प्रभु विचारने लगे कि यह श्री जनकराजकुमारी अब हमारी अयोध्यापुरी में जायेंगी। परन्तु इनके रहने योग्य एक विचित्र भवन भी बनवाना चाहिये। जैसी यह लोकोत्तर सुन्दरी है वैसा ही सर्वश्रेष्ठ, लोकोत्तर भवन इनके लिये बनता तो उत्तम था।

उसी क्षण प्रभु ने प्रेरणा की। उधर श्री अयोध्या में महाराणी श्री केकई ने स्वप्न में साकेत धाम वाला दिव्य कनकभवन ज्यों का त्यों देखा। उस कनकभवन का दर्शन कर जब वे जगीं तो उन्होंने महाराजा श्री दशरथ जी से अपने स्वप्न की बातें सुनाकर कहा कि– ऐसा एक कनकभवन अयोध्या में भी बनना चाहिये। जैसा मैं नक्शा बताऊँ वैसा ही बनाया जाय।

श्री दशरथ जी ने सोच विचार कर देवलोक में इन्द्र के पास समाचार भेजा कि विश्वकर्मा को अयोध्या में हमारे यहां कुछ दिनों के लिए भेज दीजिये। इन्द्र ने विश्वकर्मा को तुरन्त भेज दिया। विश्वकर्मा आये और महाराणी कैकेई ने जैसे–जैसे बताना प्रारम्भ किया बस, वैसा वे बनाने लग गये। भला विश्वकर्मा को बनाने में कितनी देर लगती थी। मनोयोग से साथ दिव्य शक्ति से विश्वकर्मा वह 'कनकभवन' निर्माण करने लगे। शीघ्र ही भवन का निर्माण हो गया। जिस क्षण भवन बनकर पूर्ण हुआ उसी क्षण जनकपुर से पत्रिका लेकर दूत आये कि– श्रीरामजी ने त्रिभुवन विजय सहित श्रीजानकी जी को धनुष तोड़कर प्राप्त किया है। यह समाचार सुनकर केकई जी बड़ी प्रसन्न हुईं। सोचने लगीं कि यह सुन्दर 'कनकभवन' मैं अपनी प्रिय बहू सीता को मुंह दिखाई में भेंट करूंगी। यह भवन उन त्रिभुवन सुन्दरी जनककुमारी के ही योग्य बना है। यह बात जब श्री दशरथ जी ने सुनी तो उन्होंने भी हर्षित होकर समर्थन किया कि यह कनकभवन अवश्य ही श्री जानकी जी को अर्पण किया जाय। जनकपुर से आये हुये दूत ने भी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित 'कनकभवन' देखा। वे बड़े ही प्रसन्न हुए। फिर जब उन्हें यह पता चला कि यह भवन हमारी ही राजकुमारी के रहने के लिए बन रहा है तब तो उनके आनन्द का ठिकाना नहीं रहा।

जब वे दूत जनकपुर लौटकर आये तो उन्होंने जनकपुर में सबको यह समाचार सुनाकर आश्चर्य में डाल दिया हम लोग पत्रिका लेकर पीछे पहुँचे वहाँ तो पहिले ही से श्री जानकी के रहने के लिये 'कनकभवन' बन रहा है। उस भवन को बनाने के लिये देवलोक से साक्षात

विश्वकर्मा जी आये हैं।

पश्चात् जब बारात के साथ श्री दशरथ जी जनकपुर आये तो उन्होंने श्री रामलला जी से और श्री विश्वामित्र जी से केकई का स्वप्न तथा विश्वकर्मा द्वारा 'कनकभवन' का निर्माण यह सब सुनाकर कहा कि– वह भवन नई बहू को मुंह दिखाई में दिया जायेगा। यह सुनकर भगवान् मन ही मन बड़े प्रफुल्लित हुए। भगवान् ने जैसा चाहा था वैसा ही सब कार्य लीलादेवी ने बना दिया। उस समय के आनन्दोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है।

"लोकरीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि बड़, राम मनहिं मुसुकाहिं।।

माताओं ने लोकरीति सम्पन्न करके अब मुंह दिखाई का महोत्सव प्रारम्भ किया। श्री जनकनन्दिनी जी का तो सौन्दर्य माधुर्य और लावण्य अनुपम था ही उस समय के चरित्र एवं दृश्य का एक प्राचीन कविता में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। यह कविता अयोध्या में प्राचीन समय से खूब ही गाई जाती है–

गीत

मुंह दिखाई सिया की गजब गुइयाँ।।
कनकभवन के अहाते में भीर भारी है।
हजारों रानियों की आ रही सवारी है।।
गगन में लग गया देवांगनों का मेला है।
पुरी में नारियों का भी बड़ा झमेला है।।
सब गावैं सुहाना अजब गुइयाँ।। मुंह.......
केकई रानी ने उत्साह से घूंघट खोलीं।
देखतीं रह गईं फिर पीछे संभल कर बोलीं।।
विश्व की शोभा निछावर है बहू के ऊपर।
रति रमा वाणी उमा कोई नहीं है पंटतर।।
है महल योग्य इन्हीं के सो मुबारक होवै।
नित्य नवकेलि सुहागिन को मुबारक होवै।।
सुख सों सब भांति रहब गुइयाँ।। मुंह.......
रानी कौशल्या धीर मती कर दरस बहू का फूल गईं।
मणिमाल पतोहू को अपने कर से पहनाना भूल गईं।।
तब तुरत सुमित्रा रानी ने उनको दे हार सचेत किया।
कंठसिरी दुलही को देके अपना भी मनोरथ सफल किया।।
मुख निरखि बधू का जियब गुइयाँ।। मुंह.......
इसी तरह से सब रानियों ने मुंह देखा।
निछावरों की यहाँ कौन कवि करे लेखा।।
अजिर भूषणों का ढेर लग गया सुन्दर।
सुमन से पाट दिया परियों ने मगन होकर।।

श्री कनकभवन महिमा

अनुरागि गई सबकी सब गुइयाँ।। मुंह.......

रानियाँ हट गईं औरों की वारी आई।

शान्ताजी ने निकट बैठ उतारी राई।।

बारी बारे से दिखाने लगीं श्री मुख छवि को।

ताब किसमें है जो निज दृष्टि से देखे रवि को।।

सब बिसरेउ कहब सुनब गुइयाँ।। मुंह.......

जो आईं रूप गुमान भरी इन्द्राणी आदि विबुध नारी।

उनके दिल और निगाहों में हो गया अजब अचरज भारी।।

मुख है या अजब तमाशा है कहती यो 'कलन्दर' घर वो गई।

अपना ही मुख देखा उसमें अपना सा मुख ले करके गई।।

हम हिलि मिलि बोलब हँसब गुइगाँ।

मुंह दिखाई सिया की गजब गुइयाँ।।

इस प्रकार आनन्दोल्लास पूर्वक मुख दिखाई के उपलक्ष में वह 'कनकभवन' श्रीसीताजी को माता केकई जी ने उपहार स्वरूप दे दिया। उसी समय झांकी का एक कवित्त और बहुत सुन्दर है–

खोलि मुख सिय जू को शान्ता लै समीप बैठीं,

देखिबे को जुरी हैं युवति यूथ वीसा है।

आगे पीछे दायें बायें आय आय देखैं सबै,

निज मुख दीखै पैन बहु मुख दीसा है।।

'स्वाल' कवि आपुस में मानि के अचंभा कहैं,

कैसो ये तिलिसमात कौन बकसींसा है।

फिरि फिरि जायँ फिरि आय पूछैं सासुन ते,

सीसा की बहू है कि बहू को बन्यो सीसा है।।

इस प्रकार विवाह के पश्चात् जब श्री युगल सरकार उस 'कनकभवन' में निवास करने लगे, तो वह 'कनकभवन' आनन्दमयी लीलाओं से परिपूर्ण हो गया। उस भवन की दिव्य कान्ति, दिव्य रत्नों से बनी अटारियां, ध्वजा, पताकायें, चमचमाते हुये दिव्य स्तम्भ और स्वर्णदर्पणमयी दिव्य भूमि, विचित्र मंडप, झाड़ फानूसों की सजावट को कौन वर्णन कर सकता है। उसके भीतर नये नये ढंग से बने रंग बिरंगे फुहारे चल रहे हैं। कहीं स्वर्ण के हरिण, हस्ति, सिंह आदि बने हैं कहीं बीच–बीच में प्रफुल्लित फूलों से युक्त मंजुल निकुंजें बनी हैं। कहीं विमल जलपूरित सरोवर भरे हैं। वह 'कनकभवन' सौमंजिला ऊँचा बना हुआ है। उसकी प्रत्येक मंजिल कारीगरी से परिपूर्ण है। एक मंजिल से दूसरे मंजिल पर जाने के लिए विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कमलाकार चौकियाँ बनी हुई हैं जो बैठते ही दूसरे मंजिल पर आप ही पहुंचती और उतरती हैं। झूलने के लिए जहाँ तहाँ झूले पड़े हैं। खेलने के विचित्र साज समाज वहाँ बने हुए हैं। उस सुन्दर कनकभवन में भिन्न–भिन्न ऋतु की कुंजे बनी हुई है। एक साथ ही छहो ऋतुओं का आनन्द उसमें है। वर्षा की कुंज में जाओ तो वहाँ वर्षा का समस्त दृश्य है। वर्षा हो रही है। मोर नाच

रहे हैं। वर्षा ऋतु के फूल फूले हैं। ऐसे ही वसन्त ऋतु की कुंज में वसन्ती फूल खिल रहे हैं। कोयल बोल रही है। उसमें हर महीने बसन्त ही रहता है ऐसे ही शरद ऋतु की कुंज है। उसमें मल्लिका खिल रही है। शरद चन्द्रमा का प्रकाश है। सखियाँ रासलीला के उपयुक्त मण्डप सजा रहीं हैं। नृत्य संगीत का समाँ बंध रहा है। इसी प्रकार शिशिर ऋतु तथा हेमन्त और ग्रीष्म की कुंजों में वैसा ही सब साज बना है। जिस समय युगल सरकार की जैसी इच्छा होती है वैसी ही कुंज में जाते और वैसी ही लीला करते। इन षटऋतु की कुंजों के अतिरिक्त सखियों की अष्ट कुंजों तथा भिन्न–भिन्न उत्सवों के विचित्र कुंज बने हुए हैं। बारहों महीने का आनन्द उत्सव होता रहता है। उसका वर्णन संक्षेप में 'सम्बन्धप्रकाश' ग्रन्थ में किया गया है।

छह ऋतु बारह मास को अवधपुरी सुखखानि।
सीय–लाल नित रंग में तहँ सरसत रससाानि।।
सावन रंग हिडोरने, भादौं नाव नवार।
आश्विन सरद विहार बहु, कार्तिक दीप उदार।।
अगहन ब्याह महान रस, दूलह दुलहिनि रंग।
पूस माघ सिय पिय सरस, विलसत परसत अंग।।
फागुन होरी कुंज में, सखियन के संग रंग।
केसरि कुमकुम अरगजा, पिचकारिन के जंग।।
चैत हरित लतिकान में, विहरत सखिन समेत।
कूजत कोकिल भ्रमर बहु, लाल प्रिया रस लेत।।
फूल वाटिका बाग वर, वन विकसित सर कुंज।
विलसत माधव मास में, लाल लली रस पुंज।।
तहखाने खसखान में, मोतिन महल उदार।
फूलन के बंगले बने, फूलन छुटत फुहार।।
फूलन गादी गेंदुवा, चँदवा झालरि फूल।
परदा फूल विछावने, सोहत परम अमूल।।
तामें सुमन श्रृंगार करि, विलसत नवल किशोर।
सेवहिं नैनन पलक सों, अलिगण ललि चितचोर।।
केसरि अतर कपूर शुभ, चन्द अगर, उसीर।
जेठ मास दोउ लाड़िले, बिहरत सरजू तीर।।
सुन्दर मास असाढ़ में, घटा व्योम दरसाय।
'कनकभवन' विहरन छयल, राग रंग सरसाय।।

"सम्बन्ध–प्रकाश"

इस प्रकार 'कनकभवन' में प्रभु ने अपनी आदि आह्लादिनी शक्ति के साथ अपने नित्य परिकर के सहित निवास किया।

हाँ, कुछ लोग कहते हैं कि–'वाल्मीकि रामायण' में श्री रामजी के महल का अलग नाम ही नहीं है। वे तो श्री दशरथ जी के निज महल में रहते थे।

श्री कनकभवन महिमा

ऐसा कहने वालों के लिये हम 'वाल्मीकि रामायण' का ही प्रमाण देते हैं– अयोध्या काण्ड में देखिये– जब श्री दशरथ जी ने श्रीराम जी का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया तो श्री वशिष्ठ जी को बुलाकर कहने लगे कि – "हे गुरुदेव! आप जाइये और श्री रामजी को रात्रि में आज किस प्रकार नियम–संयम से रहना चाहिये वह सब विधि सिखा आइये।" यह सुनकर श्री वशिष्ठ जी श्रीराम जी के भवन की ओर चले।

"स राम भवनं प्राप्य पाण्डराभ्रघनप्रभम्।
तिस्रः कक्ष्य रथेनैव विवेश मुनिसत्तमः।।"

वाल्मीकि अयोध्याकाण्ड पंचम सर्ग श्लोक 5।

अर्थात्– "पीले मेघ के समान आभावाले श्री रामजी के भवन में श्री वशिष्ठ जी ने तीन चौकन्तक तो रथ में बैठे–बैठे प्रवेश किया।" कितना विशाल था वह भवन। इस प्रमाण से श्री रामजी का भवन भिन्न था और वह स्वयं का था। उसकी उपमा में पीले मेघ का ही वर्णन आया है। और उधर श्री दशरथ जी का भवन चाँदी का था जिसकी उपमा में श्वेत वन बताया गया है, देखिये वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग 5 श्लोक 22 में जब श्री रामजी को कुछ अभिषेक सम्बन्धी बातें बताकर श्री वशिष्ठ जी उसी समय लौट कर श्री दशरथ जी के भवन में आते है तो श्री दशरथ जी के भवन का वर्णन है कि–

"सिताभ्रशिखरप्रख्यं प्रासादमाधिरुह्य सः।
समीयाय नरेन्द्रेण शक्रेणैव बृहस्पतिः।।"

अर्थात्– "श्वेत मेघ के सदृश धवल ऊंचे भवन पर चढ़कर वशिष्ठ जी श्री दशरथ जी के समीप ऐसे गये जैसे इन्द्र के पास बृहस्पति जी जाते हैं।"

इस श्लोक में भी दशरथ जी के भवन की उपमा ही है वास्तविक रूप का वर्णन नहीं है। उनका रूप तो पहिले ही अयोध्या के वर्णन में आ चुका है कि 'प्रासादैरत्नचितैः' अर्थात् अयोध्या में भवन स्वर्ण, चांदी, मणि, मुक्ता आदि रत्नों से बने हुए थे। इसलिए बार–बार सोना चांदी का भवन न लिखकर उसकी उपमाओं से ही सिद्ध कर दिया है कि– श्री राम जी का भवन ऐसा था जैसा सन्ध्या समय कभी कभी मेघ स्वर्ण के समान सूर्य की किरणें पड़ने से पीले पहाड़ की भांति बड़ा ही सुन्दर दीख पड़ता है। ऐसे ही श्री दशरथ जी के महल को भी श्वेत मेघ सा उज्वल बताकर चांदी का सिद्ध कर दिया है।

इस प्रकार से त्रेता में 'कनकभवन' का बड़ा भारी प्रकाश रह चुका है। कनकभवन की दिव्य–भूमि जहाँ पर भगवान सतत त्रेता में विहार करते रहे, आज भी भक्तों को आनन्द देने के लिए अयोध्या में विद्यमान है और साक्षात् प्रभु भी आज तक 'कनकभवनविहारी' के रूप में भक्तों को दिव्य दर्शनानंद देते हुए प्रत्यक्ष विराजमान हैं। प्राचीन काल में कोई 'छविनाथ' कवि हुए हैं। उनका एक 'कवित्त' प्राप्त हुआ हैं उससे पता चलता है कि उन्होंने साक्षात्कार के लिये 'कनकभवन' के द्वार पर धरना लगाकर सत्याग्रह किया था वह 'कवित्त' यह है–

याही भूमि पर अवतार सिया राम लीन्हो,
याही भूमि पर निज पग परसायो हैं।
भक्तन को पद दीन्हों दुष्टन को वध कीन्हो,

प्रेमिन का कृपा करि कंठ सों लगायो है।।
कवि 'छविनाथ' रघुनाथ की कृपा सों अब,
मेरी मन माया सो अधिक अकुलायो है।
ताते अब आयो, चाहौं प्रभु कह पायो याते,
'कनकभवन' द्वार धरनो लगायो है।।

(ख) द्वापर का कनकभवन-

द्वापर में अयोध्या

जिस समय भगवान श्री रामजी अपने साकेत धाम में पधारे तो अयोध्या के निवासी समस्त पशु-पक्षी तक भगवान के प्रेम बस भगवान के साथ ही चले गये। भगवान के जाने के पश्चात अयोध्या तो वहीं रही, परन्तु अयोध्या में बसने वाला कोई नहीं रहा था। तब भगवान के पुंत्र श्री कुश ने आकर फिर अयोध्या पुरी बसाई और तब से लेकर कुश के वंश के सहस्त्रों राजा द्वापर तक अयोध्या के सिंहासन पर विराजमान होते रहे। सूर्य-वंश के वृक्ष फूलता-फलता आया। फिर एक ऋषभ नामक राजा ने 'कनकभवन' की सजावट की थी। 'कनकभवन' में विक्रमादित्य के जमाने की एक प्राचीन शिला मिली है, वह 'कनकभवन' में सुरक्षित है, उसके अक्षर कहीं-कहीं खराब हो गये हैं, पढ़ने में नहीं आते। परन्तु उसमें 5 श्लोक स्पष्ट पढ़ने में आते हैं। उसका प्रथम श्लोक है-

जरासंधवध कृत्वा भगवास्तीथ्रपावनः।
अगात्सप्तपुरी मुख्यामयोध्याम्बिचरन्पथि।।

अर्थात्- "जरासंध का वध कराकर भगवान श्री कृष्णचन्द्र, जो कि तीर्थों को पवित्र करने वाले हैं, वह भगवान भी तीर्थ यात्रा का भावना से प्रेरित होकर सप्तपुरियों में प्रमुख तीर्थ अयोध्या में विचरते हुए आये थे।"

इस समय अयोध्या में जहाँ पर भगवान श्रीराम जी का निज मंदिर कनकभवन था, उस कनकभवन का स्वर्ण और रत्न आदि तो लोभी राजा ले गये थे और कनकभवन उस समय टूट फूट कर एक ऊंचा टीला का रूप बन गया था। उसके शिखर पर जब भगवान श्री कृष्ण पहुंचे तो वहां उन्होंने एक देवांगना को तपस्या करते हुए देखा। देवांगना का नाम 'पद्मासना देवी' था। वह देवी उस 'कनकभवन' की भूमि पर श्री सीतारामजी के साक्षात्कार के लिए तपस्या कर रही थी। उस शिखर पर भगवान श्रीकृष्ण ने पहुँचकर विश्राम किया-

विश्राम शिखरे प्राप्य परमामोदसयुतः।
दिव्यांगनां तपस्यन्ती नाम्नाँ पद्मसर्नाशुभाम्।।
शृंगाग्रे कनकागारे परया कृपया हरिः।
श्रीसीताराममूर्तिवै प्रदाय द्वारकामगात्।।

अर्थात्- "भगवान ने उस टीले पर पहुंच अत्यन्त आनन्द का अनुभव किया। वहां पर जो पद्मासना नामक देवी तप कर रही थी, उस कनकभवन के टीले के अग्रभाग पर बैठी उस देवी पर श्रीकृष्ण ने कृपा की। उस देवी की श्रीराम भक्ति देखकर वे बड़े प्रसन्न हुये। उसको श्री सीताराम जी की मूर्ति प्रदान करके भगवान द्वारका को चले गये।"

इस शिलालेख में कनकभवन का नाम 'कनकागार' कहा गया है। अब यह विचार करना है कि वह देवी कौन थी और क्यों तप कर रही थी? उस देवी को भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीसीतारामजी की मूर्ति कहाँ से लाकर प्रदान की।

शिलालेख को गम्भीरता से देखने पर पता चलता है कि कोई देवी पद्मासना नाम की भगवान श्रीसीताराम जी की अनन्य भक्त थी, और उसकी यह इच्छा होगी कि भगवान श्री सीताराम जी का साक्षात्कार प्राप्त हो, तो उस पर कृपा करके भगवान श्रीकृष्ण जी ने कहा होगा कि तुम कोरा तप कहीं मत करो, श्री सीताराम जी मूर्ति विराजमान कर प्रेम से उनकी निरन्तर सेवा–पूजा करो। इस उपासना से प्रसन्न होकर भगवान साकेतविहारी तुम्हें प्रकट होकर दर्शन देंगे। अन्यथा मूर्तियां प्रदान करने का क्या प्रयोजन था। उसका प्रेम बढ़ाने के लिये उपासना बताई होगी अथवा उसक देवी पद्मासना का यह मनोरथ रहा होगा कि अयोध्या धाम का प्रसिद्ध 'कनकभवन' मन्दिर जो जीर्ण–शीर्ण होकर टीले के समान हो गया था, उसका पुनः जीर्णोद्धार हो, तब भगवान श्रीकृष्ण से उसने अपना मनोरथ कहा होगा और भगवान श्रीकृष्ण ने उस 'कनकभवन' की टीले के अग्रभाग की ओर अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर जान लिया होगा कि उसक नीचे त्रेतायुग की प्राचीन युगल मूर्तियाँ विद्यमान हैं। यह जानकर श्रीकृष्ण भगवान ने उस टीले को खुदवाकर मूर्तियाँ निकाली होगीं और देवी पद्मासना को मूर्तियाँ इस प्रकार देकर चले गये होंगे। पश्चात् उस देवी ने 'कनकभवन' का जीर्णोद्धार हो जाने पर प्रतिष्ठा करके वे ही मूर्तियाँ वहाँ विराजमान की होंगी, उन्हीं मूर्तियों की हजारों वर्षों तक कलियुग में अनेक भक्तों ने सेवा पूजा की होगी। हमारे मत से यही विचार ठीक जंचता है। क्योंकि शिलालेख में स्पष्ट है कि–

श्रृंगाग्रे कनकागारे परया कृपया हरिः।
श्रीसीताराममूर्तिम्वै प्रदाय द्वारकामगात्।।

अर्थात्– "कनकभवन के टीले के अग्रभाग से परम कृपा करके श्रीसीतारामजी की मूर्ति प्रदान करके प्रभु द्वारका गये।"

इस शिलालेख के प्रमाण से यही सिद्ध होता है कि मूर्तियाँ अपने राज्यकाल में श्री कुश जी ने 'कनकभवन' में ही स्थापित की होंगी। क्योंकि अपने माता–पिता के भवन में उन्होंने उनकी स्मृति में मंदिर बनाकर पूजा अवश्य की होगी।

पश्चात् जब वह 'कनकभवन' द्वापर में लोभी राजाओं द्वारा स्वर्ण रत्न आदि निकाले जाने पर या भूकम्प आदि में गिरकर फिर टीला सा बन गया होगा और मूर्तियाँ उसमें दब गयी होंगी। जो भी हो परन्तु यह निश्चय है कि इस प्रकार द्वापर में भी 'कनकभवन' रहा। वर्णन है कि महाराज कुश ने त्रेता के अन्त में और द्वापर के आरम्भ में राज किया है। उनके स्थापना किये हुए युगल सरकार के वे श्री विग्रह कनकभवन में द्वापर के अन्त तक ज्यों का त्यों विद्यमान रहे। उनको ही श्री कृष्ण भगवान ने पुनः भवन से प्रकट किया।

(ग) कलयुग में कनकभवन–

कलियुग में श्रीविक्रम द्वारा जीर्णोद्धार

उसी प्राचीन शिलालेख में आगे आता है कि–महाराजा श्री विक्रम जी ने दिग्विजय करने

के पश्चात् अयोध्या में आकर इस 'कनकभवन' का जीर्णोद्धार कराया था। वह मूल श्लोक शिला में इस प्रकार है–

चन्द्राग्निवेदपक्षः परिमितिशरदि श्रीमतौ धर्ममूर्तेः।
पौषेकृष्णाद्वितीया महिसुतदिवसे जीर्णमुद्धृत्य भूयः।।
श्रीमद्‌गन्धर्वसेनात्मजनृपतिलको विक्रमादित्यनामा।
श्रीसीताराममूर्तिः कनकभवनगाः स्थापयामास नूनम्।।

अर्थात्– चन्द्र (1) अग्नि (3) वेद (4) पक्ष (2), अर्थात्– 24 : 1 क्योंकि सांकेतिक अंकों को उल्टा गिना जाता है। "अंकानां वामतोगति" के अनुसार। श्री धर्मराज युधिष्ठिर के सम्वत् 2431 के पौषकृष्ण द्वितीया मंगलवार को कनकभवन का पुनः जीर्णोद्धार कराया। श्रीमान् गन्धर्वसेन के पुत्र नृपतिलक श्री विक्रमादित्य जी ने श्रीसीतारांम मूर्ति, जो कनकभवन की थी, उसी में फिर प्रतिष्ठा कराके स्थापित की।

उपरोक्त शिलालेख से पता चलता है कि महाराज विक्रम ने बड़ी श्रद्धाभक्ति से कनकभवन का जीर्णोद्धार कराया था। उपरोक्त दोनों श्लोकों से पहले जो श्लोकों में आया है कि श्री पद्मासना देवी को भगवान ने मूर्तियां दी थी, उस पद्मासना का चरित्र उनको कैसे पता चला। निश्चय ही वहाँ पर द्वापर का प्राचीन इतिहास उसमें उनको शिलालेख द्वारा मिला होगा, उसमें पद्मासना का विवरण दिया होगा–उसी को लेकर विक्रम ने इस अपनी शिला में लिखाया होगा। अथवा–महाराज विक्रम के सम्बन्ध में अनेकों चमत्कार प्रसिद्ध हैं। बड़े–बड़े देवी देवता उनको दर्शन देते थे। वे योगी भी थे। योगबल से सर्वज्ञता भी उनमें थी। हो सकता है उनको दिव्यांगना पद्मासना देवी ने ही 'कनकभवन' के जीर्णोद्धारार्थ दर्शन दिया हो।

पूज्य महात्मा श्री बालकराम जी विनायक ने तो 'कनकभवन रहस्य' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि– "जब महाराज विक्रमादित्य श्री अयोध्या का पुनः सुधार करा रहे थे तो उस समय एक दिन उन्होंने एक स्थल पर एक परम सुन्दरी देवी को ध्यानमग्न देखा। देवी की आँखें बन्द थी। उस शान्त मूर्ति की छवि देखकर महाराज विक्रम स्तब्ध हो गये। कुछ समय एक एकाग्रता से देखने के बाद वे शान्त मन से वहीं बैठ गये और उस देवी की समाधि खुलने की प्रतीक्षा करने लगे।

देवी की समाधि जब भंग हुई तो अधखुले नेत्रों से राजर्षि को देखा। विक्रम ने प्रणाम किया। उस देवी के तेज से जो किरणों निकल रहीं थी, उनको महाराज सह न सके। वे दूर हटकर खड़े हो गये। महाराज ने अपना परिचय देकर देवी का परिचय पूछा। देवी ने बताया कि– जिस स्थान पर मैं बैठी हूँ, यही प्राचीन 'कनकभवन' है। इस स्थान की महान् महिमा मैं जानती हूँ। यहाँ पर भगवान श्री सीताराम जी ने निवास किया था। इस समय यह भवन टूट–फूट गया है। परन्तु, इसका जैसा रूप त्रेता में था वह दिव्य 'कनकभवन' तुम देखना चाहो तो मैं दिखा सकती हूँ।

देवी ने दिव्य दृष्टि देकर महाराज को 'दिव्य कनकभवन' का दर्शन कराया। उसे देखकर महाराज आश्चर्य में पड़ गये। वैसा भवन वे किसी प्रकार से निर्माण नहीं करा सकते थे। परन्तु, देवी ने कहा कि–आप जैसा भी हो सके सुन्दर से सुन्दर कनकभवन बनवाकर शीघ्र

इस प्रभु के निज भवन का जीर्णोद्धार करा दें। मैं आपकी दिव्य रूप से सब प्रकार से सहायता करती रहूँगी। ऐसे कहकर वे देवी आदृश्य हो गयी।

उसी की प्रेरणा पर महाराज ने कनकभवन का निर्माण कराकर प्राचीन मूर्तियाँ जो वहाँ प्रतिष्ठित थीं उन्हीं को फिर स्थापित किया।

उस समय की विक्रमादित्य द्वारा अयोध्या के जीर्णोद्धार के सम्बन्ध मे और भी अनेकों कथायें प्रचलित हैं। कहा जाता है कि शकों पर अपनी विजय प्राप्त करने के लिये विक्रम ने भगवान श्रीराम जी का आश्रय लिया था। श्रीराम मंत्र जप के प्रभाव से उनको विजय प्राप्त हुई थी। तब उसी समय उन्होंने अयोध्यापुरी में चलकर एक श्रीराम मन्दिर बनाने का संकल्प किया था। जब अयोध्या आये तो उन्होंने श्री सरयू की धारा में एक काले घोड़े पर सवार होकर व्यक्ति को घोड़े समेत प्रवेश करते देखा। वह थोड़ी ही देर में घोड़े सहित ऊपर आ गया। किन्तु, घोड़ा काले से श्वेत हो गया था और वह व्यक्ति भी काले से गौरवर्ण हो गया था। उस देवतुल्य व्यक्ति से विक्रम ने परिचय पूछा। उसने कहा– मैं तीर्थराज प्रयाग हूँ। मेरे में जो पापी स्नान करते हैं वह अपना सब पाप मुझे दे जाते हैं और मै नित्य प्रति इसी समय अयोध्या आकर सरयू में स्नान करके निष्पाप हो जाता हूँ। और आपके मन में जो अयोध्या के उद्धार की इच्छा हुई है, इसीलिए मैं आपके सामने प्रत्यक्ष हुआ हूँ। मैं आपको यहाँ के समस्त प्राचीन स्थलों का रहस्य बता सकता हूँ। इस प्रकार तीर्थराज प्रयाग के बताये हुये समस्त कुण्ड, परिक्रमा–स्थल, सहस्त्रधारा, सभी घाट आदि का तथा मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया गया।

कुछ लोग कहते हैं, कई सहस्त्र ब्राह्मणों द्वारा अनुष्ठान कराया गया था जिसमें यज्ञ भी हुआ था। यज्ञ में सूय्र भगवान प्रकट हुए थे। सूर्य भगवान द्वारा बताये हुये स्थानों पर प्राचीन तीर्थ पुनः प्रचलित एवं प्रतिष्ठित किये गये। जो भी हो, विक्रमादित्य ने अयोध्यापुरी का सुधार तथा कनकभवन का जीर्णोद्धार अवश्य ही किया। इसको तो सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।

श्री विक्रम द्वारा जो कनकभवन निर्माण हुआ था वह बहुत विशाल रूप में था। उसकी प्रतिष्ठा में कहते हैं कि बहुत बड़ा महोत्सव हुआ था और उसी समय अयोध्या में सारे भारत के समस्त ज्योतिषी ब्राह्मण की सभा हुई थी। जिस भाग में विक्रम के नवीन सम्वत् को प्रचलित करने का निर्णय हुआ था, तभी से विक्रम सम्वत् चालू किया गया। इस प्रकार यह करीब 2062 वर्ष पहले की घटना है, कारण आज वि.सं. 2062 (तद्नुसार सन् 2005) चल रहा है।

इस विक्रमीय सम्वत् का श्रीगणेश अयोध्या के कनकभवन के प्रांगण में हुआ हो तो इसमें आश्चर्य की कोई आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि प्रायः ऐसे महान कार्य अयोध्या, काशी आदि तीर्थो में ही शोभा पाते हैं। हो सकता है 'कनकभवन' के विशाल नूतन प्रांगण में काशी आदि समस्त तीर्थो के विद्वान उस प्रतिष्ठा महोत्सव में बुलाये गये होंगे। उस सभा में 'शक–विजय का उल्लास भी तो समस्त हिन्दू समाज में होगा ही और विक्रम का वैभव एवं प्रबल प्रताप देखकर विद्वानों के हृदय में भगवान् श्रीराम जी की प्रेरणा से ऐसे विचार अवश्य उत्पन्न हुए होंगे कि जैसे युधिष्ठिर का सम्वत् चलता है वैसे ही विक्रम का सम्वत् भी चलना चाहिए। क्योंकि महाराज विक्रम के पंडितों में कवि कालिदास जैसे महाविद्वान विराजमान थे।

इस प्रकार 'कनकभवन' का जीर्णोद्धार कराकर महाराज विक्रम को महान यश प्राप्त

हुआ। वे भगवान श्रीराम के अन्तरंग भक्त थे। वैसे तो वे सभी देवताओं की पूजा करते थे किन्तु उनका हृदय श्रीरामजी के पावन चरणों में अर्पण हो चुका था। विक्रम की सभा में 9 रत्न थे। धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि यही पण्डित नवरत्न थे। इन्हीं के द्वारा सभा में विधान सम्बन्धी कार्य भी होता था।

समय परिवर्तन–यवनों द्वारा आक्रमण

महाराज विक्रमादित्य का बनाया हुआ मन्दिर हजारों वर्ष तक ज्यों का त्यों बना रहा। हाँ, बीच–बीच में उनकी मरम्मत आदि होती रही है। विक्रम द्वारा बनवाये हुये कनकभवन में आकर करोड़ों भक्तों ने भगवद्दर्शन, कथा, कीर्तन आदि के द्वारा अपना आत्मकल्याण किया। पश्चात् विक्रम रूपी सूर्य के अस्त होने पर भारत के शासक बदलने लगे और समुद्रगुप्त ने अपनी राजधानी अयोध्यापुरी को बनाया। वह समुद्रगुप्त राजा भक्तिमान था। वह श्रद्धापूर्वक नित्य कनकभवन में भगवान के दर्शनार्थ आता था। प्रातः मंगला आरती और सायं आरती में उपस्थित रहने का उसका नियम था। उसकी इस भक्तिनिष्ठा की चारों ओर खूब प्रशंसा होती थी। उसने विक्रम द्वारा बनवाय हुए 'कनकभवन' की मरम्मत कर नये–नये मंडपादि बनवाये थे तथा रत्नों से जड़वाया था। उसकी भक्ति फलवती हुई और समुद्रगुप्त भारत का एकछत्र सम्राट हुआ।

उसके राज्य में धर्मग्रन्थों के पठन–पाठन का प्रचुर प्रचार हुआ। उसके सुन्दर सुराज्य में प्रजा में भक्ति का खूब बाहुल्य रहा। अयोध्या तीर्थ में उस समय यात्रियों का बहुतायत में आगमन होने लगा था। जनता श्रीराम भक्ति का प्रकाश पाकर अज्ञानान्धकार को त्यागने लगी थी। सब दिशायें आनन्दमय हो गयी थीं समुद्र के पश्चात् अनेकों राजा हुये। अयोध्या से हटाकर इन्द्रप्रस्थ आदि अनेकों में राजधानी फिर बनी और बिगड़ी।

प्राप्त जानकारी के अनुसार, संक्षेप में यह इतिहास मिलता है कि चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने युधिष्ठिर के युग 2431 (यानी कि आज सन् 2005 से 2062 वर्ष पहले) कनकभवन को पहली बार बनवाया था। फिर समुद्रगुप्त ने वि.सं. 444 (सन् 387) में पुनः और बड़ा किया एवं उसकी मरम्मत करवायी थी। इस मन्दिर को सलार जंग गाजी (जो महमूद गजनी का सेनानायक था) ने वि.सं. 1084 (सन् 1027) में तोड़ा था, जिसको पुनः वर्तमान में टीकमगढ़ की रानी ने वि. सं. 1948 (सन् 1891) में वर्तमान रूप में बनवाया।

उधर अरब देश में पैदा होकर मुहम्मद साहब ने इस्लाम धर्म चलाया। उनके अनुयायी संसार भर को मुसलमान बनाने और संसार भर में मुसलमानी राज्य स्थापित करने के लिये तलवारें ले लेकर चल पड़े। पारस, ईरान आदि देशों को अपने कब्जे में करते हुए वह दल भारत की ओर बढ़ा। भारत में उस समय वीर क्षत्रियों के प्रबल पराक्रम के आगे वह दल हार खाकर भाग गया। पश्चात् कई वर्ष पीछे तैयारियाँ करके मुसलमान फिर इधर हमला करने को उद्यत हुए। सुल्तान महमूद गजनीव ने छल पूर्वक भारत पर आक्रमण करके कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया। उसके ही एक सेनानायक सालर जंग द्वितीय, जो गाजी कहलाता था, बढ़ते–बढ़ते युद्ध केन्द्र स्थापित करके अयोध्या और काशी पर बार–बार आक्रमण करके कब्जा कर देवस्थानों को नष्ट करना प्रारम्भ किया। कनकभवन पर जन्मभूमि मन्दिर पर उसने चार बार बहुत भयानक हमला किया था। तीन बार तो वीर हिन्दुओं ने यवनों को परास्त कर भगा

दिया था किन्तु चौथी बार उस दुष्ट ने बड़ा जाल रचा। उसने तिलक नामक एक ब्राह्मण सिपाही को फौज का सेनापति बनाकर अयोध्या में युद्ध करने भेजा वह तिलक बड़ा चालाक था। उसने अकेले ही भक्त ब्राह्मण का वेष बनाकर कनकभवन में प्रवेश किया। भगवान का दर्शन करके (राक्षस प्रकृति का होने पर भी) उसका विचार बदल गया।

'कनकभवन' के देवराज पुजारी से कहने लगा "आप इन मूर्तियों को उठाकर अपने घर में ले जाइये। मुसलमानों की फौज बड़े जोर से आ रही है। आज ही ले जाइये। सम्भव है कल तक न जाने क्या हो।" पुजारी की समझ में बात आ गयी। वह उसी दिन अपने घर में युगल सरकार को उठा ले गया।

दूसरे ही दिन तिलक ने मुसलमानी फौज को हिन्दुओं की पोशाक पहनाकर अयोध्या में प्रवेश करवा दिया। हिन्दुओं ने समझा कि यह किसी हिन्दू राजा के सिपाही हैं अयोध्या दर्शन आये हैं रात्रि में योजना बनाकर उस तिलक ने मारकाट मचा दी भोलेभाले असावधान हिन्दुओं को मुसलमानी फौज मारकाट कर भागने लगी। बेचारे हिन्दू धोखे में फँस गये। अयोध्या पर इस प्रकार गजनवी का कब्जा हो गया।

देवराज पुजारी ने मूर्तियों को अपने घर में पधरा लिया। वहीं उनकी सेवा पूजा होने लगी। जब भक्तों को पता लगा तो वे उनके घर दर्शनार्थ जाने लगे। जनता की श्रद्धा के कारण सेवा–पूजा में कमी नहीं हुई। सैकड़ों दर्शनार्थी कनकभवनविहारी का दर्शन करने को पुजारी के घर नित्य पहुंचने लगे। उस पुजारी के परमधाम पधारने पर उसकी कन्या के पुत्र ने सेवा–पूजा सँभाली। किन्तु वह तामसी प्रकृति का था। उससे सेवा न हो सकी। उसने एक लाला नवनिधिराय को वे युगल मूर्तियां दे दीं। लाला साहब ने अपने घर में ही मन्दिर बनवाया और सेवा–पूजा बड़ी धूमधाम से विधिपूर्वक ब्राह्मणों द्वारा होने लगी।

इस प्रकार बहुत वर्षों तक तो भगवान लाला के द्वारा बनवाये मन्दिर में ही रहे। उस समय कनकभवन टूटा–फूटा पड़ा था उसमें एक कोठड़ी अब भी अवशिष्ट थी। वह पक्के पत्थर की होने के कारण सुदृढ़ थी। उस कोठड़ी में वही विक्रमादित्य द्वारा स्थापित शिला थी जो खंडित थी। उसमें श्लोक लिखे हुए थे हिन्दुओं ने उस शिला को स्मारक रूप उसी कोठरी में रख दिया था। उसी को जनता आकर माला–पुष्प–अक्षत चढ़ा जाती थी और प्रार्थना करती थी कि हे प्रभो! इस कनकभवन में भगवान कभी फिर पधारें।

कनकबिहारी का वापस कनकभवन आना

विक्रम की 18वीं शताब्दी में जब लाला जी के वंशजों द्वारा सेवा–पूजा में त्रुटि होने लगी तो प्रभु श्री कनकभवनविहारी ने लाला के वंशजो को स्वप्न दिया कि– "हमको कनकभवन में ही फिर पधरा दो।"

वंशजों में उस समय के लाला सम्पतिराय जी ने ठाकुरजी की आज्ञानुसार युगल मूर्ति को श्री 'कनकभवन' की उसी कोठड़ी में स्थापित कर दिया । उस समय यवनों का आंतक समाप्त हो चला था। पहिले मुसलमानों ने अयोध्या को बार–बार खूब ही ध्वस्त किया था। जब अयोध्या में यवनों का उपद्रव कम पड़ा तब साधू महात्मा आकर कुटी बनाकर रहने लगे। धीरे–धीरे वैष्णव महात्माओं की श्रीरामनाम ध्वनि अवध में चारों ओर गुँजने लगी। कनकभवन

में जब से पधारे तब से प्रभु ने चमत्कार दिखाना भी प्रारम्भ कर दिया जनता की श्रद्धा बढ़ने लगी और जिसका जो मनोरथ होता वह प्रभु पूर्ण करते। दूर–दूर से भक्तजन आने लगे। कनकभवन का रूप रंग भी बदलनें लगा और कोठड़ी के इधर उधर उत्सव योग्य सब सामग्रियाँ तैयार होने लगीं।

किसान लोग अपने खेतों में अनाज तैयार होते ही पहिले लाकर 'कनकभवनविहारी' को उसमें से भेंट करते थे। साग बेचने वाले 'कनकभवन' में साग पहुंचा जाया करते थे। धीरे–धीरे प्रेमी–समाज बढ़ने लगा।

(घ) तुलसीदास के समय का कनकभवन–

श्री तुलसीदास जी के समय में कनक़भवन

श्री रामचरितमानस के रचियता गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी कनकभवन में भक्तों का समाज खूब एकत्रित होता था और बड़े भाव से अष्टयाम सेवा–पूजा होती थी। गोस्वामी जी के चरित्र में आया है कि काशी से एकबार जब गोस्वामी जी अयोध्या आये तो दर्शनार्थ 'कनकभवन' पहुंचे। शयन का समय था तो वहाँ के नित्य के गायक श्री मुक्तामणिदास जी ने अपना बनाया शयन का पद गाया। उस पद के सुन्दर भावों पर गोस्वामी जी इतने रीझ गये कि उस गायक से कहा कि जो इच्छा हो वही वस्तु मुझसे मांग लो। उस समय मुक्तामणिदास जी ने कुछ न मांगकर प्रभु की सेवा ही मांगी।

वह पद इस प्रकार है–

शयन करहु रघुवीर पियारे।
हाँ आई पठई कौशिल्या, बड़े भूप उठि सदन सिधारे।।
युगल याग यामिनी बीती है, नयनहु नींद भरे रतनारे।
प्रफुलित शरद कोकनद मानो, मन्द समीर मलय कर धारे।।
रत्नजटित मणिमय मंदिर महँ, रुचि सुचि शोभित जनकसुतारे।
मग जोवत सहचरी सिया की, शयन उचित सब सौंज संवारे।।
अति आलसबस भये हैं लखन युत, भरत लाल रिपुहन उजियारे।
सुनत सबहिं दै पान बिदा करि, उठे दास मुक्तामणि, वारे।।

उपरोक्त चरित्र से पता चलता है कि स्वामी जी के समय में 'कनकभवन' का वैभव परिपूर्ण था। पश्चात् गोस्वामी जी ने अयोध्या ही में रहकर सम्वत् 1631 में श्री रामायण लिखी थी। यदि उस समय मुसलमानों के उपद्रवों से संतापित संतजन अयोध्या में बिल्कुल ही नहीं रहते हो तो श्री गोस्वामी जी का अयोध्या में वर्षों रहकर रामायण का लिखना कैसे बन सकता था। इसलिए अयोध्या गोस्वामी जी के जमाने में भक्तों तथा सिद्ध सन्तों की निवासस्थली बनी हुई थी। अतः 'कनकभवन' में उस समय प्रभु–सेवा पूर्णरूप से होती थी। उसी समय के श्री अग्रदास जी के संस्कृत में रचे हुये तथा नाभा जी के द्वारा हिन्दी चौपाइयों में रचे हुए दानों अष्टयाम में दिव्य 'कनकभवन' की सेवा का वर्णन मिलता है।

***

अध्याय 6

वर्तमान मन्दिर का निर्माण

नव निर्माण की उत्कण्ठा

एक पंडित सिद्धेश्वर जी जो कि पंडित श्री उमापति जी त्रिपाठी के प्रिय शिष्यों में थे और अयोध्या वास करते थे, उनका श्री कनकभवनविहारी में अपूर्व प्रेम था। उन्हें श्री कनकभवन की टूटी–फूटी दशा अच्छी नहीं लगती थी। कोठड़ी थी, दालान था और महात्मा श्री रसिकअली जी की प्रेरणा से एक सेवक ने आठ कोठड़ी और बनावा दी थीं पर इससे क्या वह 'कनकभवन' राजमहल थोड़े ही प्रतीत होता था। वह नित्य दर्शन करने आता और प्रभु से प्रार्थना करता कि–"प्रभो! यह अपना भवन तो सुन्दर बनवा ही दीजिये।"

उस भक्त की उत्कण्ठा बढ़ने लगी। वह सब संतों से भी यही बात कहता कि कोई "कनकभवन" को विशाल रूप में बनवा देता तो अच्छा होता। पर सब उसे यही उत्तर देते कि– जब भगवान् की इच्छा होगी तब बनेगा। यह हम लोगों के बस का काम नहीं हैं बहुत बड़ा काम है। परन्तु इस उपदेश से उनको संतोष नहीं हुआ। एक दिन वह मणि पर्वत की ओर जो रहे थे कि वहाँ एक महात्मा से भेंट हुई। उन महात्मा ने कहा–आपकी यदि ऐसे ही उत्कण्ठा है तो आप श्रीराम जी के मंत्रराज का अनुष्ठान कीजिये। विधि में बतलायें देता हूँ। परन्तु अनुष्ठान हनुमानजी के सामने होना चाहिए भगवान् के मंत्र में सब शक्ति है अवश्य ही काम पूरा होगा। साथ ही 500 परिक्रमा हनुमान जी की नित्य करना।

वि. सम्वत् 1934 फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को भक्त ने अनुष्ठान प्रारम्भ किया। तीन वर्ष का अनुष्ठान था। अनेकों विघ्न–बाधाओं का सामना करते हुए भी पंडित सिद्धेश्वर जी ने अनुष्ठान पूर्ण कर लिया। उसी दिन स्वप्न में श्री हनुमान जी ने कहा– "आप धैर्य धारण करें। आप जैसा चाहते हैं वैसा ही होगा। 'कनकभवन' शीघ्र ही बहुत सुन्दर राजमहल सा बन जायगा।"

जिस दिन अनुष्ठान पूर्ण हुआ उसी दिन ओड़छा राज्य (मध्य प्रदेश) में नई घटना घटी। उस भक्त पं. सिद्धेश्वर की भावना पूर्ण करने के लिए प्रभु ने ओड़छा नरेश की महाराणी को स्वप्न देकर मन में अयोध्या के दर्शन की उत्कण्ठा की और साथ ही अयोध्या में 'कनकभवन' का जीर्णोद्धार करने का संकल्प भी स्वाभाविक हृदय में उत्पन्न कर दिया। वह घटना इस प्रकार है कि– महाराणी उस समय 'जतारा' गयी हुई थीं। स्वप्न में आज्ञा होते ही वे वहीं से दो–चार दासियों को तथा दो एक सेवकों को साथ लेकर सीधे अयोध्या आईं। उनके साथ में परम पंडिता श्री मुन्नबाई भी थीं। साधारण यात्रियों की भांति महाराणी आईं। अपना परिचय किसी को न बताने का आदेश दिया था। अयोध्या में एक साधारण यात्री की तरह वे 'कनकभवन' में पहुंची। कार्तिक कृष्णा दशमी वि.सं. 1944 दिन गुरुवार की यह बात है। उस समय प्रसिद्ध महात्मा श्री

जगदेवदास जी उपनाम "सियाअली" जी महाराज कनकभवन के पुजारी थे। प्रभु का दर्शन कर महाराणी का चित्त शान्त हो गया। उनके चित्त मे जो उच्चाटन और उद्वेग था वह सब दर्शन करते ही दूर हो गया। कनकभवनविहारी की छवि पर वे न्योछावर हो गयीं। प्रेमरस से ह्रदय परिप्लावित हो गया। उन्होंने उसी क्षण अपना तन–मन सब मानसिक रूप से प्रभु को अर्पण कर दिया। उसी क्षण "कनकभवन" का जीर्णोद्धार कराकर विशाल भवन बनाने का दृढ़ निश्चय किया। श्री पुजारी जी से उन्होंने प्रभु कृपा के लिए अनेक उपासना के रहस्य भी प्राप्त किये।

उस समय 'कनकभवन' के महन्त श्री लक्ष्मणदास जी थे। उनसे आपने वास्तविक परिचय दिये बिना ही 'कनकभवन' का कुछ जीर्णोद्धार करने की इच्छा अपने सेवकों द्वारा प्रकट करा दी। इस प्रकार कुछ संत–सेवा करके बिना अपने को प्रकट किये ही महाराणी अपनी राजधानी ओछड़ा को चली गयीं।

महन्त श्री लक्ष्मणदास जी को चलते समय, महाराणी के एक सेवक ने अपना टीकमगढ़ का पता लिखा दिया था। महन्त जी ने सोचा कि यह कोई सेठ हैं मंदिर का जीर्णोद्धार कराना ही है। चलो टीकमगढ़ चलें, देखें वह लोग यदि सचमुच ही 'कनकभवन' की सेवा करने को तैयार हैं तो उनको उत्साहित करें, यह कार्य शीघ्र ही हो जाय तो अच्छा।

महन्त जी टीकमगढ़ पहुंचे। महाराणी जी के सेवकों से इनकी भेंट हुई। परमभक्त श्री मुन्नीबाई के द्वारा महाराणी जी के पास समाचार भेजा गया कि 'कनकभवन' के महन्त जी आये हैं। जब सेवकों ने महन्त जी को बताया कि साधारण यात्री के रूप में जो गयीं थीं, वह टीकमगढ़ की महाराणी हैं। यह सुनते ही महन्त जी चकित हो गये। सोचा– कि तब तो निश्चित ही वे 'कनकभवन' बनवा सकती हैं।

महाराणी ने महन्त जी के पास धन, वस्त्र आदि खूब भिजवाये महन्त जी परम प्रसन्न होकर सम्मान प्राप्त कर अयोध्या लौट आये। कुछ दिनों के बाद महाराणी साहिबा अपने राजा साहब तथा बड़े–बड़े कर्मचारियों के साथ अयोध्या आईं। महन्त श्री लक्ष्मण दास जी ने 'कनकभवन' की समस्त भूमि महाराणी जी के नाम लिख दी और शीघ्र 'कनकभवन' को विशाल महल के रूप में देखने की इच्छा प्रकट की। महाराणी जी ने उसी क्षण महल को बनाने के लिये प्रतिज्ञा की तथा महन्त जी के लिए उनको आजन्म समस्त खर्च अपनी ओर से देने स्वीकार किया। 'कनकभवन' को अपने नाम लिखने के उपलक्ष में रत्न और धन भी दिया।

> नारीभूषण नृपकुल कमला, जो भतिमूर्ति गुणखानी थी।
> रिझवार राम पर रीझ गई, ज्ञानी थी परम सयानी थी।।
> मैं 'कनकभवन' बनवाऊंगी, यों अटल प्रतिज्ञा ठानी थी।
> था नाम रुचिर "बृषभानुकुमारि" वह ओड़छेस की रानी थी।।

—श्री 'महेश' कविकृत

कनकभवन का निर्माण

महाराणी जी टीकमगढ़ चलीं तो आईं, परन्तु मन श्री कनकभवन–कुंज में ही छोड़ आयीं। आठों पहर कनकभवन का ही ध्यान एवं चर्चा रहती। नये नये भजन बनातीं और कीर्तन करतीं।

प्यारी लागै अवध की दे गलियाँ, जहँ बिहरत प्रीतम सिया अलियाँ।
वन विनोद लागत अति सुन्दर सघन, द्रुमन विकसित कलियाँ।।
उत्तर बहत सरस सरजू जल, निरखत नवल लहर भलियाँ।
'रामप्रिया' हिय बसत सदाहीं, अतिहि अनूप नगर गलियाँ।।

इस प्रकार वे नित्य नये–नये पद रचना करने और प्रेमरंग में निमग्न होने लगीं। महाराजा साहब को महाराणी की यह अनूठी प्रेमभक्ति देखकर अपार श्रद्धा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपना जीवन सार्थक माना। वे सोचने लगे–ऐसी भक्ति हमारे हृदय में नहीं आई। परन्तु यदि हमारी अर्द्धांगिनी की ऐसी दिव्य प्रेम दशा प्राप्त हुई है तो वह भी हमारी ही वस्तु है।

कभी–कभी महाराणी की ऐसी दशा हो जाती कि उनको देश–काल की कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। कभी विरह में व्याकुल हो रात रात भर महल की छत पर बैठी आकाश की ओर देखकर प्रभु को बुलातीं। उनके मन की पीर वे ही जानतीं, दूसरा कौन जान सकता था।

"कबहूँ मिलिबो कबहूँ बोलिबो, यह धीरज ही में धरैवो करै।
उर ते कढ़ि आवै गरे तो फिरै, मन की मन ही में सिरैवो करै।।
कवि "बोधा" न चाउ सरो कबहीं नितहिं हरवा सो हिरैबो करै।
सहते ही बनै कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरवो करै।।

इसी दिव्य दशा में उनकों एक दिन आनन्दमय सन्देश सुनने को मिला। जब प्रभु को प्रेमी चाहता है तो स्वयं उपाय करते हैं–

"जब कृपा करके किसी प्रेमी को अपनाते हैं।
मिलने की घात उसे आप ही बताते हैं।।"

एक भक्ता मुन्नाबाई ने आकर सूचना दी कि अयोध्या से कनकभवन के महन्त श्री लक्ष्मणदास जी टीकमगढ़ आये हुए हैं। 'कनकभवन' से कोई आया है, यह सुनते ही उन्हें महान् हर्ष हुआ। जैसे ऊधव जी के आने पर गोपिकाओं को हर्ष हुआ था। प्रियतम प्रभु का कुछ सन्देश लायें होंगे। इस भावना से अनुराग–सागर उमड़ चला। महाराणी ने खूब दान–मान से उनका सत्कार किया। वे प्रसन्न होकर महाराणी की भक्ति की सराहना करते हुये अयोध्या लौट आये।

कुछ दिनों बाद ओड़छा के महाराज और महाराणी दोनों ही अयोध्या आये। राजकर्मचारियों के साथ बड़े ठाठ–बाट से धूम–धाम से अबके वही महाराणी फिर अवध में आईं जो पहले एक सामान्य यात्री के सदृश आई थीं। महाराज ने और महाराणी ने सन्तों का खूब सत्कार किया। अयोध्या में सर्वत्र इन दोनों की भक्ति की प्रशंसा होने लगी। महन्त जी से 'कनकभवन' का

जीर्णोद्धार करने की चर्चा चली। महन्त जी ने कनकभवन की भूमि आदि सबकी लिखा–पढ़ी करके महाराणी को समर्पण कर दिया। विशाल कनकभवन बनवाने की सब बात पक्की करके फिर महाराणी परिवार सहित टीकमगढ़ चली आईं।

छः महीने बाद महाराणी साहिबा फिर अयोध्या आईं और राज्य के प्रधान इंजीनियरों को साथ लाईं। अपने मंत्रिगण के द्वारा 'कनकभवन' का विशाल मन्दिर निर्माण करने का श्री गणेश करा दिया। वि.सं. 1944वैशाख शुक्ल 10बुधवार को श्री कनकभवन की नींव डाली गयी। यह शुभ मुहूर्त करके महाराणी टीकमगढ़ चलीं गयीं। इधर राज्य के बुद्धिमान कर्मचारीगण कनकभवन के सुन्दर निर्माण कार्य में सच्चे हृदय से संलग्न हो गये। चार वर्ष में "विशाल भव्य कनकभवन" बनकर तैयार हो गया। जो वर्तमान में आजकल आप देख रहे हैं।

इधर महाराणी ने जाकर बड़े–बड़े सिद्ध महात्माओं तथा पंडितों के द्वारा अनुष्ठान बैठवाये कि–भगवान् साकेतधाम से साक्षात रूप से कनकभवन में आकर विराजमान हों और कलियुग में सभी भक्तों को साक्षात्कार का आनन्द प्रदान करें। आपकी उस दिव्य झाँकी को दीन भक्त देख सकें और आप उन पर कृपा करने को अपनी चितवन और मुसकान प्रत्यक्ष दिखला सकें। महाराणी जी निरन्तर यही प्रार्थना करतीं थीं। प्रभु ने प्रेरणा की। किशोर अवस्था की बड़ी मूर्ति बनवायी गयी। स्वप्न में प्रभु ने कहा–"हम साक्षात् रूप से साकेतधाम से आकर तुम्हारी बनवाई हुई मूर्ति में विराजमान होंगे। सभी भक्तों को अपने विवाह के समय के दुल्हारूप का सा दर्शन सुख प्रदान करेंगे। आपकी मनोभिलाषा पूर्ण होगी। चिन्ता मत करो।" पश्चात् इस सम्बन्ध में कई महात्माओं को भी अनुभव हुआ था।

धीरे–धीरे बड़े विशाल रूप में बड़ी मजबूत के साथ बनते बनते चार वर्ष में कनकभवन बनकर तैयार हुआ। महाराज और महाराणी आये। बड़े समारोह की साथ लाखों रूपये खर्च करके 'कनकभवन' की प्रतिष्ठा हुई। यज्ञ कर्त्ताओं को तथा विधिपूर्वक स्थापना करने वाले ब्राह्मणों को यथेच्छ द्रव्य देकर संतुष्ट किया गया। प्रतिष्ठा के समय बड़े–बड़े चमत्कार देखने में आये। प्रभु ने अपने आगमन की सूचना दी, बड़े–बड़े विचित्र अनुभव हुये।

वि.सं. 1948 वैशाख शुक्ल 6 को कनकभवन की पूर्ण विधि से प्रतिष्ठा महाराणी ने करायी। प्रतिष्ठा के समय समूह वेष का भंडारा किया। उस भंडारे में किसी को मनाई नहीं थी। सहस्त्रों व्यक्तियों ने दूर–दूर से आकर भोजन किया था। सभी अयोध्यावासियों को यथेष्ट दान–मान से तृप्त किया गया। सभी लोग कहते थे कि आज वही आनन्द अनुभव हो रहा है जैसा कि त्रेता में श्रीरामजन्म के समय का उत्सव सुना जाता है।*

प्रतिष्ठा के समय ही महाराणी ने 6 लाख रूपये के आभूषण अर्पण करके भगवान् कनकभवनविहारी के सेवा–पूजा, राज–भोग, कर्मचारियों आदि के खर्च सबके लिए समुचित व्यवस्था कर दी ताकि कभी भी कोई त्रुटि सेवा में न आने पाये।

उस उत्सव के समय में एक सभा हुई थी। उस सभा में अनेक कवियों ने कविताएँ सुनाई थीं। उनमें से एक दो इस पुस्तक में दी जाती हैं। कृपया पद वाला अध्याय देखें–

श्री कनकभवन महिमा

*नोट :–'कनकभवन' में जो दिव्य मनोहर युगल सरकार बायीं ओर हैं वही प्राचीन त्रेता के हैं द्वापर में भी रहे। विक्रमादित्य ने इनकी प्रतिष्ठा की थी। तब से अभी तक भक्तों को आनन्द देते हुए विराजमान हैं, तथा दाईं ओर जो परम सुन्दर कनकभवन विहारी बिहारिणीजू हैं वे महाराणी के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं जिनमें साक्षात् साकेतधाम से प्रभु अपनी समस्त कान्ति लेकर अवतरित हुए हैं। प्रभु तो उन दोनों रूपों में एक ही हैं–परन्तु महाराणी के बड़े किशोर रूप का आकर्षण उस दिव्य धाम से किया है। उस छटा को भूमि पर उतारने का प्रयत्न श्री महाराणी ने किया था। देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु साक्षात् हंस–बोल रहे हैं। मूर्ति नहीं मालूम होती। जो बायीं तरफ छोटे सरकार नीचे की तरफ हैं वह कृष्ण भगवान वाले बताये जाते हैं।

नवीन द्वार निर्माण

श्री कनकभवनविहारी भगवान् के दर्शनार्थ यात्रियों की बड़ी भारी भीड़ प्रतिदिन होती है। अयोध्या के सभी प्रतिष्ठत संत बड़ी श्रद्धा से नित्य प्रतिदिन आते हैं और प्रभु की रूपमाधुरी का आस्वादन अतृप्त नेत्रों से करते हैं किन्त, मन्दिर का जो द्वार था वह कुछ छोटा होने से दर्शनार्थीयों को असुविधा होती थी परन्तु प्राचीन द्वार जैसा बनना था वैसा बन गया था। अब क्या हो सकता था। यही सोचकर सब रह जाते थे।

एक दिन उस समय के वर्तमान मैनेजर पं. श्री हरप्रसाद जी के ह्रदय में यह भाव उदय हुआ कि यदि प्राचीन छोटे द्वार को हटाकर नया द्वार बनवा दिया जाय जो सबको दर्शनों की सुविधा हो जाय। जब महाराजा साहब दर्शनार्थ अयोध्या आये तब मैनेजर साहब ने विचार प्रकट किया। महाराजा साहब ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जयपुर के प्रसिद्ध कारीगरों द्वारा कलात्मक ढंग से दो वर्ष में द्वार बनकर पूर्ण हुआ। द्वार में स्वर्ण–रजत का विचित्र काम बनाया गया। इसमें समस्त अवतारों की मूर्तियाँ भी बनायी गयी। इस द्वार का उद्‌घाटन विजयादशमी सम्वत् 2018 को हुआ। इस कार्य के लिए महाराजा साहब ने तथा मैनेजर साहब ने कितनी लगन के साथ परिश्रम किया है, यह वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्री वृषभानु धर्मसेतु प्राइवेट ट्रस्ट

ट्रस्ट के प्रथम प्रेसीडेन्ट श्री महाराजाधिराज सवाई महेन्द्र महाराज सर प्रतापसिंहजू देव बहादुर सरामद राजगान बुन्देलखण्ड जी.सी.एस.आई.जी.सी.आई.ई. भारत धर्मरत्नाकार जी हुए। द्वीतीय प्रेसीडेन्ट श्री सवाई महेन्द्र महाराजाधिराज सर वीरसिंहजू देव बहादुर सरामद राजगान बुन्देलखण्ड के.सी.एस.आई. हुए। तृतीय प्रेसीडेन्ट महाराजाधिराज श्री सवाई महेन्द्र महाराजा सर देवेन्द्रसिंहजू देव बहादुर सरामद राजगान बुन्देलखण्ड हुए। वर्तमान समय में ट्रस्ट के चौथे अध्यक्ष श्री मधुकरशाह जू देव जी हैं।

ट्रस्ट का नियम इस प्रकार है कि प्रेसीडेन्ट स्वयं ओड़छा राज्य के गद्दीनशीन महाराजा ही होते हैं। मन्दिर सम्बन्धी व्यवस्था के लिये एक मैनेजर रहता है। मन्दिर सम्बन्धी सभी कार्य प्रेसीडेन्ट की आज्ञानुसार ही सम्पन्न होते हैं।

श्री कनकभवन महिमा

प्राण प्रतिष्ठा के समय गाये गए पद

कनकभवन प्राण प्रतिष्ठा के समय गाये गए कुछ पद

(1)

साधन अनेक अवराधन सकल फल,
पाय गई प्रेम विरहानल में तै गई।
भाषै कवि 'शंभु' निज धन की प्रथम गति,
गुनि हिय माहिं प्रभु सेवा ही में दै गई।।
रागी को सुदाम औ विरागी को सुक्षेत्र धाम,
दे दिवाय सब को अछय जस लै गई।
चारि ही बरस में बनाय के 'कनकभवन'
वृषभानु कुंवरि विमल कीर्ति कै गई।।

(2)

सकल प्रकृति ते परे है जो अचल धाम,
नेति नेति कहैं वेद परत न चीन्हों है।
जाको ध्यान धरत सतत 'शम्भु' मुनि जन,
जनक ने जाको सुख नैन भरि लीन्हों हैं।।
सोई दिव्य कान्ति लै पधारे प्रभु भूमि पर,
साकेत स्वधाम ही प्रकट करि दीन्हों है।
ऐसे कलियुग में बनाय के कनकभवन,
वृषभानुकुँवरि ने गजब सो कीन्हों है।।

श्री "शम्भू कवि"

श्रीराम का महल बना जैसा कि चाहिये।
पुख्ता किला अचल बना जैसा कि चाहिये।।
उस ही 'कनकभवन' को फिर से बना दिया।
वृषभानुकँवरि जू ने, सचमुच गजब किया।।

श्री शिवचरनलाल "शौक"

***

अध्याय 7

कनकभवन की मधुर झाँकी

कनकभवन की माधुरी

उपासना के आचार्यों द्वारा प्रभु का सर्वांग शोभा का ध्यान करने की विधि निर्धारित की गई है। ध्यान से मन निर्मल निर्विकार होकर तन्मय हो जाता है। यह महान् योग है। एकाग्रता रूप में जैसी होती है वैसी अष्टांगयोग में नहीं होती। नख से शिख पर्यन्त भिन्न–भिन्न अंगों का वर्णन कवियों ने करके वह आनन्द लूटा है। जब रूप प्रिय लगता है, जब रूपवान से प्रीति होती है। प्रीति से बढ़कर तन्मयता किसी भी अन्य साधन से नहीं होती। इसीलिए यह प्रेम भी महान योग है। इस प्रेम के वश में देवता, मनुष्य सभी हो जाते हैं। इसी से भक्तों ने प्रभु को कलियुग में बुलाकर अयोध्या के 'कनकभवन' में बिठा दिया। जिसकी इच्छा हो प्रत्यक्ष प्रभु की शोभा में मन लगाकर भवसागर से पार चला जाये। उन कनकभवनविहारी की माधुरी क्या कहें।

कागद् तौन उठै करते, कर लेखनी कम्पित कौन उठावै।
लालन दृष्टि परे जबते, प्रिय नाम सुने अंसुवा झरि लावै।।
"प्रेमसखी" मधुकी मखिया, अंखियाँ भई हाथ नहीं मन धावै।
मूरति श्री रघुनन्दन की, लिखते न बनै लखते बनि आवै।।

हाँ, जिसने देखा–बस वही जानता है। वह प्रेमी जो रूप पर आसक्त हो गया उसकी प्रीति में दृढ़ता बढ़ते–बढ़ते महाभाव की उत्पत्ति होती है। वह तो अनूठी रहस्य सुख की स्थिति है। इस दशा में साधक स्वभाव सहित अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में अर्पण कर देता है। इस दशा में प्रबल लगन होने पर प्रभु की दिव्य लीलाएं ध्यान में दिखाई देती हैं। उसकी गति जगत् से विलक्षण हो जाती है। वह तो मधुमक्खी से सदृश रूपरस पान करने के लिये ललचाता है। उस माधुरी पर नेत्र चकोर बन जाते हैं–

भोरी भई सुधि माधुरी पागि, लगे मुखचन्द्र चकोर से नैना।
सौम्य चितै चित चोरि लियो, बुधि बौरी भई 'बैजनाथ' न चैना।।
ज्यों मखियाँ मधु जाय फस्या मन, हाथ नहीं सो कढ़ै किमि बैना।
मूरति श्यामल औध लला की, लखान वनै पै वखान बनैना।।

प्रभु की रूपमाधुरी पर आसक्त दास, सखा, वात्सल्य, सखी इन चारों भाव वाले भक्तों को होती है। सखीभाव वाले इस रस का अनुभव कई प्रकार से करते हैं। होली के समय में सखी प्रभु सें कहती हैं कि आपको तो रंग या गुलाल डालने की जरूरत ही नहीं। क्योंकि आपके अंगों से स्वयं ही रंग बरस गया।

"राघव रंग भरौ अंखियाँ, अवलोकनि रंगहिं में जनु बोरी।
रंग भरी मुसुकानि मनोहर, पान बिरी मुख रंग रच्या री।।
रंग भरे मुख बैन कढ़ै, गज चाल चलौ रंग राचि रह्यो री।
अंगहि के रंग भीज रही हम, नाहक डारत हो रंग रोरी।।

प्रभु के मस्तक पर मणिमय मुकुट के अतिरिक्त पगिया का भी वर्णन आया है और

अंग–अंग में अनुपम आभूषणों के साथ नूपुरों का भी वर्णन आया है। जब श्रीराम सखे जी को साक्षात्कार हुआ तो आपने ऐसा ही दर्शन किया था–

"पगिया शिर लाल हरी कलंगी, उन चन्दन केसरि खौर किये।
मनमोहन 'राम' कुमार सखी, अनुहारि नहीं जग जन्म लिये।।
पग नूपुर पीत कसे कछनी बनमालनि को बनी माल हिये।
विहरै सरयू तट कुंजन में तहँ 'रामसखे' चित चोरी लिये।।

यह प्रेमियों के भगवान हैं। रसमय हैं। उनका सर्वांग रसमय है। एक सखी कहती है–

मोपै रस की चितवन डारी।
हो दशरथ जू के लाल, मोपै रस की चितवन डारी।।
कटि पीताम्बर धोती सौहै, लाल पाग शिर न्यारी।
ता पर तुर्रा अधिक मनोहर, मोतियन झालर प्यारी।।
बिहरत फिरत प्रमोद विपिन में, श्यामल छवि मनहारी।
नासामणि की लटक चाल पर 'युगलप्रिया' बलिहारी।।

श्री राघवेन्द्र सरकार की आँखों का प्रेमियों ने विशेष वर्णन किया है–

"लाज जहाज अमिय रस माते, राते मनहुं नशीले हैं।
चंचल चपल सुढार नुकीले, बांके कुटिन गंसीले हैं।।
कजरारे अनियारे लोने प्यारे सुधर हँसीले हैं।
श्री 'रामलला' दिलदार सजन के, नैना अजब रसीले हैं।।"

प्रभु के पीताम्बर की छवि का भी बड़ा ही सुन्दर वर्णन है कि–

"चामीकर गरन चहुं किनारण झालर मोतिन की छवि है।
बूटी जरतारी, मीनाकारी, विज्जु घटा की छटा दबि है।।
सने सुगन्धन ओढ़े कंधन, सुखद प्रकाश प्रात रवि है।
श्री 'रामलला' तन श्यामल पर, क्या पीत डुपट्टे की छवि है।।"

उस अनुपम रूपमाधुरी का पान करते–करते प्रेमीजन कभी तृप्त नहीं होते। वह रूप अलौकिक है। उसमें यही विशेषता है कि वह प्रतिक्षण नया–नया ही लगता है। जिसने वह रूप अयोध्या में आकर 'कनकभवन' में नहीं देखा वह उस रस को क्या समझेगा। जो आये और तुरंत लौटने की जल्दी पड़ी तुरंत लौट पड़े। ठीक से यह भी नहीं देखा कि 'कनकभवन' विहारी प्रभु ने वस्त्र आज किस रंग के पहने थे। वह भला उस अंग–अंग की चितवन मुसकान की माधुरी की बात क्या जाने। उस दिव्य शोभा का आनन्द तो वही भक्त अनुभव करते हैं जो वहाँ कुछ समय बैठकर केवल उस छवि को ही एकाग्रमन से देखें।

कनकभवन में तो प्रभु साक्षात् विराजमान हैं, अजी जिनको स्वप्न में भी दर्शन देते हैं वही उस आनन्द को जानता है। वह रूप श्री वृषभानुकुंवरि जू महाराणी की पुत्रवधु श्री विजावर की महारानी श्री कांचनकुंवरि जी ने स्वप्न में देखा था। प्रभु ने स्वप्न में वह छवि दिखाई थी उसी दिन से उनकी दिव्य दशा वैसी ही बन गई जैसी मीरा को प्रेमोन्मत्त दशा थी। उन्होंने स्वयं लिखा है–देखिये इस पद में कितनी विलक्षण सरसता, मधुरता और मिलन की प्रत्यक्ष अनुभूति

वर्णन की गइ है–

"क्रीट मुकुट झलकाय अचानक जाने कहाँ ते आये।
सोवत ही में सुखद नींद में, रंग महल सुख पाये।।
राजकुँवर चितचोर छबीले, सुपनेहिं दरस दिखाये।
घुँघराली अलकैं मुख झलकैं, केसर तिलक सुहाये।।
गोल कपोलन कुण्डल चमकैं, दृग कंजन छवि छाये।
मुक्तामाल हिये पर राजत, सुमनहार मन भाये।।
करकंजन धनु सायक फेरत, मंद मंद मुसकाये।
'कंचनकुँवरि' कतल कर दीन्हीं, तकि दृगवान चलाये।।"

अन्तिम चरण में कैसी मर्मभरी वेदना है। घायल ही नहीं हुई वे, उनका हृदय ही कतल कर गये। शरीर नहीं कतल किया। हृदय की बात है। परन्तु, उस छवि की माधुरी का आस्वादन करके वह कहती हैं–बस मेरे ही हिस्से में आया था वह रूप। उसे तो और कोई देख नहीं सकेगा। वह अतुलित छवि तो बस–

"अतुल छवि मेरे ही काज रही।
सजल नील घनश्याम राम छवि, हृदय विराज रही।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, कँलगी छाज रही।।
खंजन नैन सुभग अंजन युत, मृग छवि लाज रहीं।
लसत विभूषण अंग–अंग प्रति, सुषमा साज रही।।
पीताम्बर कटि लसत वसन वर, बानिक भ्राज रही।
'कंचनकुमरि' बिलोकति यह छवि, ना सुधि आज रही।।"

इसी प्रकार जिन प्रेमियों के हृदय में प्रेम की कसक है वही इस रस को समझ सकते हैं। नहीं तो वैसे प्रभु राक्षसों को भी दिखाई दिये थे। उन राक्षसों को प्रभु के दर्शन से सुख नहीं हुआ। वे तो हृदय मलीन होने के कारण पापों से ग्रसित होने के कारण, उस रूप को देखकर भी नहीं आनन्द पा सके, उल्टे वे क्रोध करके शत्रुता करते हुये प्रभु से लड़ते रहे। इसलिए प्रभु की छविं प्रेम ही के द्वारा सुखद होती है। जहाँ प्रेम है वहीं प्रभु को प्राप्त किया जा सकता है। आप यदि न माने तो कनकभवन में सच्चे प्रेम के साथ बैठकर उस रूप माधुरी का एकटक अवलोकन करें। फिर देखें क्या सुख है। हमारे भाग्य में वह सुख है। हमने उसका रस अनुभव किया है तभी तो हम कहतें हैं कि–

"मुख अरविन्द सों प्रफुल्लित कपोल गाल,
मन्द मुसकान पर चन्द बलिहारी हैं।
बड़े बड़े लोचन रसीले और कटीले बड़े,
चंचल चपल चितवनि मनहारी है।।
'जयराम देव' रंग बरषत अंग अंग,
छवि की तरंग लागै प्रेमिन को प्यारी है।
"कनकभवन" के बिहारी सरकार तेरी,
माधुरी समस्त विश्वमंडल सों न्यारी है।।

श्री कनकभवन महिमा

(2)

शीश पै किरीट मणिमंडित मयंक सम,
कुण्डल कलित कान्ति शोभा अतिभारी है।
उर मणिमाल जयमाल नव फूलमाल,
भक्तमाल धारी कर–शर धनुधारी है।
लालिमा ललित पदकमल विमल छवि,
कवि 'जयरामदेव' जन सुखकारी है।
"कनकभवन" के विहारी सरकार तेरी
माधुरी समस्त विश्वमंडल सों न्यारी है।।

उस माधुरी की बात कहने की नहीं थी। परन्तु क्यों कही गई कि जैसे कोई अमृत संजीवनी जड़ी पा जाय तो वह चाहेगा कि यह बूटी पाकर सभी लाभ उठायें तो उत्तम होगा। यह उपासना पद्धति महान् विज्ञान के आश्रय से प्रकट हुई है। इसके द्वारा मुक्ति सहज़ ही में प्राप्त हो जाती है। जो इस रूप से मन को आसक्त करें वही इस जगत की आसक्तिं को मिटा सकते हैं। हमारा तो जीवन प्राण यही है यह राजकुमार हमारा प्रिय है। हमारा तो सब कुछ इन पर न्यौछावर है–

रघुबर लागत हैं मोहिं प्यारो।
कानकभवन राजत रघुनन्दन, दशरथ राजदुलारो।।
क्रीट मुकुट मकराकृत कुण्डल, पीताम्बर पट वारो।
भाल विशाल माल मोतिन की, मोतन नेक निहारो।।
जानकीनायक जन सुखदायक, रूप जगत ते न्यारो।
माधुरी मूरति को मन भाई, अंग अंग उजियारो।।
राजत रूप अनूप भूपसुत, चित सों टरत न टारो।
'अग्रअली' बिन मोल बिक्यो मन, जीवन प्राण हमारो।।

कनकभवन की स्वामिनी की माधुरी

अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की अधीश्वरी महारानी श्री सीताजी की ही कनकभवन में प्रधानता है। उन्हीं की आज्ञा समस्त परिकर पर चलती है। यों तो उनके भृकुटी के इंगित मात्र पर समस्त सृष्टि बनती और बिगड़ती रहती है। किन्तु महल के भीतर वे जो कुछ आज्ञा प्रेम पूर्वक करना चाहती हैं उसके पहले ही सखीगण उनके मन की बात जानकर वह सेवा करने लग जाती है। वे सखियाँ उनके मन की ही बनी हुई हैं, ऐसा लगता है। श्री सूरकिशोरी जी ने श्री जी के वैभव का कितना सुन्दर वर्णन किया है।

"सची सिर ढारैं चवंर, उर्वसी उड़ावैं भौंर,
सावित्री सेवैं पद, महिषी महेश की।
बरुन धनेस राज, राज उडुराज कन्या,
गान्धविनी किन्नरी, कुमारी सेवैं सेस की।।
ललना नरेशन की, दमकैं सुदामिनी सी,

सौंज लिये आसपास, खड़ी देश देश की।
कन्या तिहुं लोकन की, तिन में 'किशोर सूर',
अद्भुत किशोरी बेटी, राज मिथिलेश की।।

इस प्रकार कनकभवनेश्वरी ही सर्व श्रेष्ठ हैं। आपसे बढ़कर समस्त ब्रह्माण्डों में कोई नहीं है। समस्त शक्तियाँ आपकी सेवा करती है। जो माया सब जगत को नचाती है वह आपके इशारे पर नाचती है। 'सीतायन' में लिखा है कि–

"सिया जू रानिन में महारानी।
चितवहिं भौंह खड़ी कर जोरे, इन्द्रानी ब्रह्मानी।।
गौरी पान लगावहिं रचिपचि, रमा खवावहिं आनी।
आठौं सिद्धि खड़ी कर जोरे, नवनिधि सदा बिकानी।।
कोटिन ब्रह्माण्डन की प्रभुता, रोम राम अरुझानी।
जो माया एकहि घाटै पर, सबै पियावै, पानी।।
सो चाहति जाकी करुणा को, बार बार सनमानी।
जाबिन पत्तहु हिल न सकत है, घट घट माहिं समानी।।
सो संतन की इष्ट देवता, 'रामप्रिया' जग जानी।।"

ऐसी अपार ऐश्वर्य माधुर्य–लावण्यमयी महारानी की महान महिमा को दिव्यदृष्टि सम्पन्न सन्तजन ही जानते हैं। शास्त्रों में उनकी महिमा का तो सर्वत्र वर्णन ही है। समस्त 'रामायण' में तो श्री स्वामिनी जी का ही चरित्र प्रधान है। यहां पर तो उनकी रूपमाधुरी का केवल वर्णन करना है। प्राचीन रसिकाचार्य श्री कृपानिवास जी को साक्षात् श्री कनकभवनविहारी का दर्शन हुआ था, उस माधुरी का दर्शन करके आपने युगलमाधुरी प्रकाश ग्रंथ में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते है कि वह तो रूपमाधुरी देखते ही बनती है कहते नहीं बनती। उनकी वाणी में कितनी रसमयी झांकी है–

गौरव के जालन सों लालन को मान गहै,
दहैं लाज काज सहैं काजर कलान की।
प्रीति मतवारी सुकुमारी छवि प्यारी लग,
कारी भई दई श्याम भृंग उपमान की।।
चातुरी करेंदी मनसेंदी हरसेंदी कर,
रंग उमगेंदी वह बेंदी चिबुकान की।
देखे ही बनत नहिं भनत "अलि निवास",
लोचन के आस फुरी माधुरी सी जानकी।।"

इस कविता में केवल श्री स्वामिनी की उस बिन्दी का वर्ण है जो कि अधरों के नीचे चिबुक पर एक श्याम बिन्दी लगा दी जाती है। वे कहते हैं जो मेरे नेत्रों की आशा थी वह श्री जानकी जी की माधुरी के रूप में पूरी (प्रकट हुई) है। उनकी शोभा तो ऐसी अनूठी है कि कोई कवि वर्णन कर ही नहीं सका। एक बार किसी उत्सव के समय में माता कौशल्या जी ने आँगन में श्री जनकनंदिनी जी को बुलाया था। उस समय की उनके मुखचन्द्र की माधुरी देखिये–

श्री कनकभवन महिमा

"सासु की बुलाई सीय आईं अंगनाई बीच,
ताछिन मृगाक्षिन को रूप हेरि हरिगो।
उलही दुकूलन तै दुलही के अंग कान्ति,
चंचल चमक चौंध लोचन में भरिगो।।
घूंघट उघारि मुख देखतीं दशा बिसारि,
फैलते प्रकाश मुख चन्द्र मंद परिगो।
गिरिजा गिरा गुमान, सिन्धुजा सचीं को मान,
काम वाम रूप अभिमान कूंच करिगो।।"

अहा! कैसी विलक्षण मुख चन्द्र की माधुरी है जिसने समस्त रूपवतियों के अभिमान को ही नहीं रहने दिया। देखने योग्य बस संसार भर में दुलहिन तो एक ही है। सखियाँ कहती है।

"देखने योग सिया दुलही री।
सुषमा सत्य श्रृंगार सार लै, रचत नबल विधि बुद्धि गही री।
कुन्दन कुन्द तड़ित नेवछावरि, सब सुठौर जस अंग चही री।।
खुलत करोरि चन्द आनन दुति, छहरि छोनि सखि चकि सी रही री।
'कनकालय' केकई सुमित्रा, सुत सेवा हित दीन्ह सही री।।
माघ हस्त गुरु असित सप्तमी, वधू सूप करु सास कही री।
छरस तूर्य विधि बहु व्यंजन कै, बैठे सब धरि पीढ़ सही री।।
थार वसिष्ट भूप राघव दै, भरत लखन पुनि रिपुहन ही री।
मुनि प्रेरित नृप चूड़ामणि दै, करि भोजन जग द्वार बही री।।
सासु खवाय दास दासिन दै, आपु बहिनि सह ग्रास लही री।
अंश वांहे दै लाल प्रिया संग, 'बैजनाथ' बसिहौं कबही री।।"

अर्थात्–"देखने योग्य तो श्री सीताजी हैं। ऐसी दुलहिन यह हैं कि जिसको ब्रह्मा ने शोभा –सत्य शृंगांर का सार लेकर बनाने में बल बुद्धि खर्च की हो सो बात नहीं है। ब्रह्मा ने इनको बनाया ही नहीं, यह तो स्वयं प्रकट हुई हैं। स्वर्ण, कुन्दपुष्प और दामिनी इनकी कांति पर न्योछावर हैं। अंग अंग जैसा चाहिये सब सुन्दर सुडौल है मुख चन्द्र की दिखाई जब दुलहिन की हुई थी तो उस समय कोटि चन्द्र की चाँदनी पृथ्वी पर छहरा गई। सखी सब चौंक पड़ी। केकई ने 'कनकभवन' दिया और सुमित्रा ने अपने पुत्रों को सेवा में अर्पण कर दिया। माघ महीना कृष्णपक्ष की सप्तमी को माता कौशल्या ने प्रथम रसोईगृह में जाकर भोजन करने का उत्सव रचाया। सब कहने लगे आज श्री मिथलेश राजकुमारी जो कि "पलंग पीठि तजि गोद हिंडोरा, सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा" ऐस विश्वसुन्दरी श्री सीताजी अपने हाथ से रसोई करेंगी। आज न जाने कैसा विलक्षण स्वाद इस भोजन में आयेगा। अनेकों प्रकार के दिव्य व्यंजन अपने कर कमलों से श्री जी ने बनाये। अनेकों मिठाइयाँ आदि समस्त रसोई जब बन गयी तो अखिल ब्रह्माण्ड की स्वामिनी ने दुलहिनरूप में थाल सजाये। श्री दशरथ जी, श्रीराम जी सहित चारों भ्राता तथा श्री वशिष्ठ जी सब स्वर्ण के पट्टों पर बैठे। प्रथम वशिष्ठ जी तथा श्वसुर जी के आगे

थाल रखकर श्री जी ने चारों भ्राताओं को परोस कर जिमाया। सब उस दिव्य स्वाद की सराहना करने लगे। ऐसा तो जीवन में कभी स्वाद ही नहीं पाया था। वशिष्ठ जी से आज्ञा लेकर श्री दशरथ जी ने दिव्य चूड़ामणि बहू को उस समय उपहार में दिया। और सब लोग दरबार में चले गये ती श्री जी ने समस्त सासुओं को और दास–दासियों को भोजन कराकर पश्चात् अपनी बहिन के साथ बैठकर स्वयं भोजन किया। नगर की और सखियाँ कहती हैं कि हमारा कब ऐसा सौभाग्य होगा जो कि ऐसी श्री जी के संग में हम कभी निवास कर सकेंगी क्या कभी प्रिय–प्रियतम जब गलबहियाँ देकर बैठेंगे और हम उनकी शोभा देखती हुई उनकी सेवा करेंगी।

श्री जी की माधुरी का आनन्द तो सखियाँ ही प्राप्त कर सकती हैं अथवा उनकी विलक्षण सुधामाधुरी का पान श्री सरकार करते हैं। प्रभु उनकी मुस्कान पर किस प्रकार मोहित हैं–

"सो लखि पिया मोहे री सिया की मुसकान।
नैन लिखे मुख विकस्यो मनोरम, रस भृकुटिन धरि आन।।
अधर लसन छवि हंस असन की, लखि ललचैं प्रिय प्रान।
"कृपानिवास" सहज बस करनी, प्यारी की यह बान।।

श्री स्वामिनी की सखियाँ ही उस आनन्द का अनुभव करते हुए कहती हैं कि–

"आज बनी हो बनी सिया बाँकी।
सुखमा सदन बदन सुखदायक, प्रीतम की छवि छाकी।।
रती रती भरि रमा रमक भरि, अर्धांगिनी उमा की।
गिरा मुखर अबला जग की सब, ममता में नहिं जाकी।।
स्वामिनि सी स्वामिनि पियसे पिय, जीवनधनि सखियाँ की।
'जुगल बिहारिनि' प्रांणप्रणयिनी, दासी चरन सदा की।।"

श्री कनकभवन विहारी की छवि माधुरी

कवित्त

मुख अरविन्द सों प्रफुल्लित कपोल गोल,
मंद मुसकान पर चंद बलिहारी है।
बड़े बड़े लोचन रसीले औ कटीले बड़े,
चंचल चपल चितवन मनहारी है।।
'जयरामदेव' रंग वरषत अंग अंग,
छवि की तरंग लागै प्रेमिन को प्यारी है।
कनकभवन के विहारी सरकार तेरी,
माधुरी समस्त विश्व मंडल सों न्यारी है।।

(2)

शीश पर किरीट मणिमंडित मयंक सम,
कुण्डल विचित्र कान्ति शोभा अति भारी है।
उर मणिमाल जयमाल नव फूल माल,

श्री कनकभवन महिमा

भक्तमाल धारी कर शर धनुधारी है।।
लालिमा ललित पदकमल विमल छवि,
कवि 'जयरामदेव' जन सुखकारी है।
कनकभवन के विहारी सरकार तेरी,
माधुरी समस्त मंडल सों न्यारी है।।

श्री कनकभवन की स्वामिनी का स्वभाव

कनकभवन की विहारिणी स्वामिनी जू,
करुणा कृपालुता दयालुता की धाम हैं।
भक्तन पे राखतीं सदैव ही दुलार अति,
सखिन पे राखतीं सनेह अविराम हैं।।
करतीं सदैव ठकुराई सब लौकन की
पापिन को पक्ष करने में सरनाम हैं।
जन 'जयरामदेव' जिनके स्वभाव पर,
रीझि रीझि मोहित है बिके प्रभु राम हैं।।

चरण पादुका का महत्त्व

भगवान राम के चरणों का महत्त्व

मर्यादापुरुषोत्तमस्य चरणं निष्कामयोगाश्रमं
चिन्ताभ्रान्तषडंघ्रिमनसां विश्रामदं शोभनम्।
संसारान्ध वने घनेऽतिगहने मार्गस्थितानां सतां
वन्दे राम पदारविन्द युगलं नेत्रद्वयं धीमताम्।।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राघवेन्द्र भगवाने के चरण तथा आचरण निष्काम योग (कर्मयोग) का आश्रम है। जो भक्त निष्काम कर्मयोग सीखना चाहे उसको हृदय में श्रीराम के चरण स्थापित करके उनके आचरण से शिक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिये।

जो व्यक्ति नाना प्रकार के चित्त के षड्विकार (काम, क्रोध आदि) से भ्रान्त व व्यस्त चित्त भ्रमर के समान कहीं विश्राम नहीं पा रहे हैं उनके लिये भगवान राम के चरण योगाश्रम के समान विश्राम देने वाले सुन्दर स्थान है। जहाँ कभी भी अभाव की प्राप्ति नहीं होती।

संसार रूप घनान्धकार भवाटवी में भटकने वाले जो बुद्धिमान सज्जन महात्मागण के लिए भगवान राम के चरणाविन्द मानों उनके नेत्र द्वय कमल हैं। क्योंकि ऐसे कठिन विपन्न मार्गों को भक्त लोग भगवान् के पदपंकजों का स्मरण कर ही विपत्ति मार्ग से परित्राण करते हैं।

***

अध्याय 8

टीकमगढ़ का भक्त राजवंश

श्री महाराणी जी का परिचय

श्री बृषभानुकुंवरि जी का जन्म वि. सं. 1912 ज्येष्ठ शुक्ल 2 शुक्रवार को तिदारी ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्रीमान् विजय सिंह जी महाराज बड़े ही धर्मनिष्ठ और वीर पुरुष थे। इनके पूज्य पिता जितने गुणवान थे, उनके कई गुणा अधिक इनकी स्नेहमयी माता थी। माता ने अपनी योग्यता से कन्या को बुद्धिमती और शीलवती बना दिया। कन्या सौन्दर्यवान तो थी ही, शुभ गुणवती माता की कृपा से हुई। क्योंकि–

पहिली शिक्षा मिलत है, निज माता की गोद।
दूजी शिक्षा देते हैं, गुड़िया खेल विनोद।।

शैशवावस्था को अतिक्रमण करके जब बालिका वृषभानुकुंवरि ने कुमारावस्था में प्रवेश किया तो इनकी बुआ श्रीमती महाराणी सहिब गरई सरकार ने इनके अलौकिक गुणों की प्रशंसा सुनकर अपने पास बुला लिया। अपने पास रखकर कन्या का लालन–पालन करने तथा शिक्षा देने लगीं। वीर क्षत्राणियों की प्राचीन कथाएँ सुना सुनाकर कुमारी के ह्रदय में दिव्य शक्ति की ज्योति जगा दिया।

"धनि धनि भारत की क्षत्राणी।
वीर कन्या वीर प्रसविनी, वीरवधू जग जानी।।
सतीशिरोमणि धर्मधुरंधरि, बुधि बल धीरज खानी।
इनके जस की तिहूँ लोक में, विमल ध्वजा फहरानी।।

किशोरावस्था आने पर श्री बृषभानुकुंवरि जी का शुभ विवाह बुन्देलवंशोद्भव रघुवंशी क्षत्रियकुलभूषण श्रीमान् सवाई महेन्द्र श्री प्रतापसिंह बहादुरजू देव बुन्देलखण्ड नृपमुकुटमणि ओड़छा नरेश के साथ वि.सं. 1926 में हुआ। महाराजा साहब ओड़छा नरेश कहे जाते हैं किन्तु, राजधानी ओड़छे से हट कर कुछ वर्षों से टीकमगढ़ में बन गयी है। ओड़छा–टीकमगढ़ सव आप ही का राज्य है।

महाराजा साहब ने टीकमगढ़ राजधानी में अनेक मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया, अनेक बाग–तालाब आदि बनवायें। अपनी प्रजा को अपने धर्म कार्यों से अपार सुख पहुंचाया। इसीलिए अपकों "धर्मरत्नाकर" की उपाधि प्राप्त हुई

प्राचीनकाल में ओड़छा के श्रीमान् हेमकरणसिंह जी महाराज ने देवी जी को प्रसन्न करने के लिए सं. 1168 में अपने सिर पांच बार काट कर चढ़ाये थे। फिर भी वे जीवित रहे। देवी ने वरदान दिया था। यह कथा प्रसिद्ध है। ओड़छा में प्राचीनकाल के इतिहास के अनुसार बड़े–बड़े प्रतापी और भक्तिनिष्ठ राजा होते आये हैं। भक्तमाल में प्रसिद्ध राजा श्री मधुकरशाह यहीं के राजा थे। उनके सामने कोई भी वैष्णवीतिलक–मुद्रा धारण कर जाता तो वे भगवान्

की भांति पूजते थे। उनकी महाराणी श्री गनेशकुंवरि जो अयोध्या से साक्षात् भगवान को ओड़छा में लाई थीं। उन्होंने जो दिव्य मन्दिर बनवाया था वह आज भी विद्यमान है। जो मूर्ति उस मन्दिर में प्रतिष्ठित है वह अलौकिक है। उसके दर्शनार्थ दूर–दूर से यात्री आते रहते हैं। इसी वंश में आगे चलकर महाराजा श्री वीरसिंह जी हुये हैं जिन्होंने सन् 1605 में मथुरा के विश्रामघाट पर 81 मन स्वर्णदान किया था। इसी वंश में महाराजा पहाड़सिंह जी हुये हैं जिन्होंने सन् 1641 में गोंडवाना विजय करके वहाँ जों म्लेच्छों द्वारा अत्याचार हो रहे थे तथा वहाँ गउएँ हल में लोग जोतते थे, उनको कष्ट से मुक्त किया था।

उसी ओड़छा राज्य के प्रतापी वंश में सन् 1874 में महाराजा श्रीमद् सवाई महेन्द्र महाराजा श्री प्रतापसिंह बहादुरजू देव हुए थे जिनका उदार चरित्र वंदनीय है। वे महान् भक्त और महान वीर तथा उदार दानी थे। साथ ही बड़े संतसेवी, सत्संगी तथा योगविद्या में पारंगत थे।

उन्हीं ओड़छा नरेश की धर्मपत्नी महाराणी श्री देवी वृषभानुकुंवरि जी थीं। आपको बाल्यकाल से ही श्रीराम भक्ति का संस्कार था। अपने पतिदेव के साथ आपने समस्त तीर्थों की यात्रा की थी। पूजापाठ करना तो आपका जीवन ही था। आपने अपने पतिदेव से योगसाधना सीखकर (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि) अष्टांग योग में पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। आपकी घंटों समाधि लग जाती थी, अखण्ड ज्योति का दर्शन होता था। आप आहार बहुत कम करती थीं। फलाहार तो आप बहुधा करती थीं। पश्चात् आपने प्रभु दर्शन के लिए उपवास भी किये थे। कहते हैं कि दो–दो चार–चार महीने तक केवल तुलसी चरणामृत या पंचामृत ही लेकर ब्रत करती थीं। उन्हीं दिनों एक बार महाराणी जी समाधिस्थ हो गयीं। उनकी दशा देखकर रनिवास की समस्त दासियाँ घबड़ा गयीं। वैद्य–डाक्टर बुलाये गये। नाड़ी की गति न पाकर चिकित्सक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। अन्त में महाराजा साहब को सूचना दी गयी। महाराजा साहब ने आकर देखा तो वे बोले वैद्य डाक्टरों का यहाँ काम नहीं है। ऐसे कहकर वे योग–मुक्ति से उनकी समाधि उतारने लगे। थोड़ी देर में महाराजा साहब ने योग–समाधि उतार दी। महाराणी जी सावधान होकर बैठ गयीं। उन्होंने ध्यान समाधि में देखे हुए प्रभु के विचित्र चरित्रों का वर्णन करके सबको प्रसन्न कर दिया।

महाराणी होकर भी इस प्रकार की तपस्या! कितना आश्चर्य है, जिस राज्य सुख के लिए लोग तरसते हैं वह सब सुख प्राप्त होते हुए भी उनको त्याग कर इस प्रकार के व्रत–उपवास और योग–साधना करना कितनी उच्चकोटि की बात है। ऐसे योगिराज महाराजा साहब और ऐसी तपस्विनी महाराणी गृहस्थाश्रम में रहते हुये भी महाराज विदेह के सदृश आचरण करके महात्माओं को भी आश्चर्य में डाल रहे थे।

"संयमी वो हैं, तपस्या की तपन जो सहते।
ज्ञान से अपनी मनोवृत्ति संभाले रहते।।
धारणा ध्यान समाधी को ही संयम कहते।
इससे बच जाते हैं भवधार में बहते बहते।।"

ओड़छा राजधानी बुन्देलखण्ड में है। बुन्देलखण्ड में कार्तिकी स्नान का बड़ा माहात्म्य

कहा जाता है। महिलाओं में इसका विशेष रूप में प्रचार है। महाराणी साहिबा भी नियमानुसार गयी थीं "जतारा"। जतारा ग्राम टीकमगढ़ से 20 मील है। वहाँ पर तालाब बहुत बड़ा है, मन्दिर है। वहाँ उन्होंने स्वप्न में अयोध्या धाम का दृश्य देखा। उन्हें ऐसा लगा कि कोई कहता है कि "अयोध्या चलो"।

इस स्वप्न की घटना पर महाराणी जी के मन में बड़े जोर का उच्चाटन हुआ। उनके मन में स्वाभाविक ये भावना उत्पन्न होने लगी कि अयोध्या में एक विशाल मंदिर बनवाऊँ तो बड़ा उत्तम हो। कारण कि हमारे पास धन की कमी नहीं। इस सम्पति का प्रभुकार्य में उपयोग हो तो बहुत ही श्रेष्ठ कार्य होगा।

महाराणी के ह्रदय में इतना उचाट हुआ कि वह वहाँ से ओड़छा लौटे बिना ही "जतारा" से ही सीधे अयोध्या की ओर चल पड़ीं। एक साधारण यात्री की भाँति दो–चार दासियाँ और भक्ता मुन्नीबाई तथा कुछ नौकरों के साथ अयोध्या आईं। कनकभवन के दर्शन करते समय महारानी ध्यानमग्न बैठ गयीं और उसी समय उनके ह्रदय में काव्यधारा उदय हुई। वे गीत बनाने लगीं और धीरे–धीरे गुनगुनाने लगीं। उन्होंने अपने गीतों में "श्रीरामप्रिया" की छाप लगाई है। यही उनका उपनाम था।

"तेरे मिलने को नाथ बहुत भटकी।
कठिन निठुरता गही रावरे, सांवरी सूरति हिय अटकी।।
बेगि दरस अब देहु दयानिधि, ताप विरह की मन छटकी।
"रामप्रिया" देखौं कब नयनन, मोहिनी छवि पियरे पट की।।"

—"वृषभानुविनोद" से

कनकभवनविहारी का पर्दा पुजारी जी ने हटाया। झाँकी करते ही टकटकी बँध गयी और अविरल प्रेमाश्रुओं की झड़ी लग गयी। गाने लगीं–

गीत

अब तो कृपा करहु नाथ, आई शरण तेरे।
दीन जानि विपति छीनि, कीजै निज दासि चीन्हि,
सब प्रकार समरथ प्रभु, पाऊँ कहँ बड़ेरे।।
करम धरम कीन्हे सो जांनत करुणानिधान,
अन्तरयामी सुजान, तुमसों नहिं छिपेरे।
अबकी बार करो उद्धार, बलि बलि मैं प्राणाधार,
गावत जस निगम नाथ, हौं अनाथ केरे।।
मिलन आस ह्रदय प्यास चातक ज्यौं रटौं जागि,
कब मिलि हैं स्वाति बुन्द, चाह चित्त मेरे।
"रामप्रिया" तजि के राज, सियावर सों मेरो काज,
औरन सौं रहौं निरास, बास चहौं नेरे।।

इनको कोई अच्छा प्रेमी भक्त जानकर पुजारी श्री जगदेवदास जी सियाअली ने कनकभवन की महिमा का रहस्य विस्तारपूर्वक सुनाया तथा कई प्रेमी भक्तों की प्रेम–कथाएँ सुनाई, जिनको सुनकर महाराणी की और भी प्रेमोन्मत्त दशा हो गयी।

महाराणी वहीं ठहर गयीं और कनकभवनविहारी की सेवा में नाना प्रकार के पदार्थ बनवाकर भेजने लगीं। विचित्र प्रकार के व्यंजन स्वयं बनातीं और स्वयं पान लगातीं। इस प्रकार कनकभवनविहारी की अष्टयाम सेवा करते–करते तथा संतों द्वारा प्रभुकथामृत का पान करते हुए कई दिन बीत गये। आपको कुछ भी समय का पता न चला।

लागी अवधकिशोर सों, लगन बड़ी बरजोर।
जानि परै नहिं प्रेम महँ, सांझ भई कब भोर।।

उधर राजधानी टीकमगढ़ से पत्र पर पत्र आने लगे। अन्त में कार्तिकी पूर्णिमा का स्नान कर महाराणी ने जाने की तैयारी की। परन्तु 'कनकभवनविहारी' के दर्शन बिना अब कैसे रहा जायगा। इस विरहभावना से मन व्यथित हो गया। उस समय एक वृद्ध महात्मा पूज्य श्री श्यामसुन्दरशरण जी महाराज कनकभवन में ही रहते थे। वह कनकभवन छोड़कर कहीं जाते ही नहीं थे। माधुर्यरस में वे पगे रहते थे। भगवान की उन पर प्रत्यक्ष कृपा होती थी। उन महात्मा जी ने इनकी विरह–दशा देखकर उनको बहुत आश्वासन दिया कि "भगवान" की इच्छा में अपनी इच्छा रक्खो। प्रेमी वह है जो प्रियतम की इच्छा को समझे। इसलिए अपने घर को लौट जाओ। फिर भगवान कभी बुलायेंगे। लोक व्यवहार का निर्वाह करते हुए भक्ति करो।"

इस प्रकार सन्तों का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर श्री कनकभवनविहारी सरकार से तथा स्वामिनी से विनय करने लगीं कि–

"हो सिया प्यारे लगन ना छूटै।
लोकलाज कुलकानि बढ़ाई, जाति पांति किन टूटै।।
परिहरि फकीरी खाक रमाऊँ, रसिक प्रेमरस लूटै।
'रामप्रिया' कहे प्राणबल्लभ सों, तुम राजी जग रूठै।।"

उस समय 'कनकभवन' में करुणारस छा गया। इसी दशा में महाराणीजी टीकमगढ़ चलीं गईं। अयोध्या में कोई परिचय न पा सका कि यह कौन हैं। एक साधारण दर्शनार्थी महाजन की भाँति दर्शन कर वे अपनी राजधानी में लौट आईं।

रानी द्वारा अन्य मन्दिरों का निर्माण

श्री कनकभवन की प्रतिष्ठा होने के पश्चात् सेवा–पूजा पूर्ण विधि से होने लगी। महाराणी जी भी अब अधिकांश अयोध्या ही में रहने लगीं। सेवा–पूजा में नाना प्रकार के पदार्थ बनाकर भेजतीं। टीकमगढ़ जातीं तो वहाँ से शुद्ध घी तैयार कराके प्रभु–सेवा में बराबर भेजती रहतीं। प्रभु के लिए नित्य नई–नई पोशाकें बनाने में उनका बड़ा ही मन लगता था।

'कनकभवन' निर्माण रूपी महाकार्य करने को पश्चात आपने टीकमगढ़ का श्री जानकी

बाग वाला मन्दिर भी जीर्णोद्धार कराया तथा तुलसी वाड़ी का निर्माण कार्य सम्पन्न कराके अन्य क्षेत्र की भी आपने व्यवस्था की थी। जनकपुर में श्री मिथलेशनन्दिनी का भी विशाल भवन बनना चाहिये। इसी भावना से आपने नेपाल–सरकार से पत्र–व्यवहार कराके सं. 1956 में जनकपुर के मन्दिर की नींव डलवाई थी। इस प्रकार जनक्पुर मन्दिर का भी सुन्दर निर्माण हो गया भक्तजन दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

एक बार श्री अयोध्या से महाराणी जी टीकमगढ़ गईं। वहाँ पर सहसा आपका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो गया। परन्तु, आपकी प्रभु प्रेम में बराबर प्रबल विरह दशा बनी रहती थीं।

गद्‌गद् बानी कंठ में, आंसू टपकें नैन।
यह तो विरहन राम की, तलफत है दिनरैन।।
पिया बिना जो जीवना, जग में भारी जान।
पिया मिलें तो जीवना, नहीं तो छूटैं प्रान।।

अत्यन्त कष्ट की दशा में एक दिन आपके पतिदेव आपके कमरे में एक ओर पलंग पर विराजमान थे और दूसरी ओर महाराणी जी भगवान के ध्यान मे निमग्न थीं। बीच में परदा पड़ा हुआ था। महाराणी बीमारी की हालत में गाने लगीं–

अवध पिया कहि तरसावै जिया रे।
हमरी लागि रही लगन तुमसों, सैनन हरयो है हिया रे।।
घरी पल छिन मोहि कल न परत है, तन मन विवस किया रे।
"अली बृषभानुकुँवरि" के जीवन, ऐसे तुम छलिया रे।।

यह गीत बनाकर इतने भाव से गाया कि उधर महाराज भी सुनकर ध्यानमग्न हो गये और इधर महाराणी के आँसुओं की झड़ी लग गयी। उसी क्षण कमरे में दिव्य ज्योति छा गयी। उस दिव्य प्रकाश से कमरा भर गया। सहसा साक्षात् श्री साकेतविहारी श्रीसीताराम जी प्रकट हो गये। प्रभु ने करकमल मस्तक पर रक्खा। जगदम्बा श्री जनकनन्दिनी जी ने धीरे से कहा–

पूर्व जन्म में रही तुम्हारी प्रबल वासना प्यारी।
"कनकभवन" बनवावन की अरु अर्चन की सुखकारी।।
सो सब भयो रह्यो तुम्हारे प्रन अब निज कुंज पधारो।
मृत्युलोक में इतनेई दिन, रहिबो रह्यो तुम्हारो।।

अर्थात्–श्रीसीताजी ने आज्ञा दी कि आपका कार्य पूर्ण हो चुका, अपने नित्य निकुंज में चलिये।

श्रीप्रभु ने भी इशारे से ऐसा ही संकेत किया और शीघ्र ही श्रीयुगल सरकार अन्तर्द्धान हो गये। उधर ओड़छाधीश्वर महाराजा साहब लेटे हुए थे। उन्होंने भी प्रकाश की झलक देखी। पहले तो वे ध्यानमग्न थे, पीछे कुछ शब्द सुनकर तथा प्रकाश देखकर चौंक पड़े। उन्होंने पूछा–कौन है, बड़ा मीठा शब्द कौन बोल रहा है। फिर उठकर वे परदे के भीतर गये। महाराणी से उन्होंने प्रकाश का और शब्द का कारण पूछा। उस समय श्री महाराणी जी का मुखमण्डल भी दिव्य दर्शनानंद से प्रफुल्लित हो रहा था। महाराणी ने समस्त वृत्तान्त महाराज को जैसा तैसा

कह सुनाया। यह सुनकर महाराजा कृतार्थ हो गये कि आज तो साक्षात् पूर्णब्रह्म प्रभु ने प्रकट होकर हमारे गृह में दर्शन दिया है। महाराणी के भाग्य की सराहना करते हुए उन्होंने शयन किया।

दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल एकादशी सं. 1963 को प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में आपने शरीर त्याग कर दिव्य साकेतधाम के कनकभवन में प्रवेश प्राप्त किया।

उनके उज्जवल यश का आज तक सभी गान करते हैं। उनका बनाया ग्रन्थ 'वृषभानुविनोद' जिसमें 365 गीत बड़े ही सुन्दर हैं, प्रकाशित हो चुका है। उस ग्रन्थ में भगवान की विनय व सखी भावना के अनूठे चरित्र वर्णन किये गये हैं।

श्री युगलप्रिया जी पर कृपा

भोग ही मानत रोग सहज वैराग मन,
शान्तिमय कर्म कर पूर्ण निहकाम।
श्री सुनेना रानि भली, सुकृत बेलि फूली फली,
जनमी सिय पाये जिन लीनो वर राम।
"युगलप्रिया" सरिता बन, बाग तरु तड़ाग राम,
नारी नर सुघर सरल ज्ञानी जे वसंत ग्राम।।

इस प्रकार श्री महारानी जी की पुत्री श्री युगलप्रिया जी भी बड़ी ही तपस्विनी हुईं। उनके सम्बन्ध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री वियोगीहरि जी ने 'युगलप्रियापदावली' ग्रन्थ का संकलन करके प्रकाशित कराया है, वे लिखते हैं–

धरी राजसी दूरि भक्ति रस रंग विकासिनी।
करि कठोर तप रमति तीरथनि तेजप्रकाशिनी।।
चढ़ि खांडे की धार विसुख जन गति मति लोपी।
संतन हरि ते अधिक मानि, वैष्णव ध्वज रोपी।।
श्री ब्रजराजेश्वरि कृपा बल, श्रुति दुर्लभ आनन्द पगी।
"युगलप्रिया" मीरा सदृश, युगल रूप रुचि रस रंगी।।

देवी श्री वृषभानुकुँवरि जी महारानी का समस्त परिवार ही भक्त हुआ। महाराणी के पुत्र भी धार्मिक हुए।

श्री महारानी जी की इच्छानुसार महाराजा ने उनके नाम से, परामर्श करके, धर्मसभा ओड़छा कायम की। उसका नाम 'श्रीवृषभानुसेतु प्राइवेट ट्रस्ट' रखा गया। इसमें प्रेसीडेन्ट स्वयं श्री महाराजा साहब हुए। वह ट्रस्ट ही श्री प्रेसीडेन्ट महोदय के आदेशानुसार अब तक सुचारू रूप से कनकभवन की व्यवस्था करता चला आ रहा है और इस ट्रस्ट का पूर्ण प्रबन्ध गद्दीनशीन प्रेसीडेन्ट के द्वारा सुचारू रूप से चल रहा है।

भक्त महाराजा श्री हेमकरण जी

भगवान् श्रीराम जी के पुत्र लवकुश की वंश परम्परा में ओड़छा के महाराजागण हुये हैं, उन्हीं सूर्यवंश क्षत्रियों में परम प्रतापी महाराजा बुन्देला जी हुए हैं। उनके नाम पर बुन्देलखण्ड प्रान्त प्रसिद्ध हुआ।

जैसे श्री रघु जी महाराज के नाम पर रघुवंश कहा गया वैसे ही बुन्देलखण्ड कहा जाने लगा। उन्हीं बुन्देला महाराजा हेमकरण जी ने विन्ध्याचल पर तप किया था और तप के उपरान्त देवी को प्रसन्न करने के लिए 5 बार अपना मस्तक चढ़ाया। वे अपना मस्तक काटकर चढ़ा देते थे और दूसरा मस्तक तत्काल निकल आता था। देवी ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन देकर वरदान दिया था। उस वरदान के प्रताप से वे विजयी और सर्व समर्थ हुये थे। वे इतने बलवान् थे कि भीमसेन की भाँति युद्ध में हाथियों को गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया करते थे। उनके अनेकों चमत्कार प्रसिद्ध हैं। दिव्य रूप से वे महाराजा आज भी बुन्देलखण्ड की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। इन्हीं के वंश में भारतीचन्द्र जी हुए हैं जिन्होंने भारत के बादशाह शेरशाह सूरी का वध किया था।

भक्त राजा श्री मधुकरशाह जी

यह महाराज भी उसी प्रतापी वंश में हुए हैं। इनका जीवन चरित्र भक्तमाल में भी आया है। यह महाराजा बड़े वीर और धर्मनिष्ठ हुये हैं। इन्होंने अपनी वीरता से युद्ध करके अकबर बादशाह के कई किले विजय कर लिय थे। मुरादशाह नामक प्रचंड वीर को इन्होंने पराजित करके अपने पराक्रम से बुन्देलखण्ड बहुत दूर तक बढ़ाया गया था। तब अकबर ने इनसे सम्मानपूर्वक सन्धि कर ली थी। इनकी वीरता का वर्णन इतिहासकारों ने लिखा है। एक बार अकबर ने इनको आगरे बुलाया था। सभी देशों को महाराज बुलये गये थे। उस समय दरबार में कई क्षत्रिय महाराजा, जो वैष्णव थे, तिलक लगाकर जाते थे। श्री मधुकरशाह वैष्णव थे, तिलक लगा के जाते थे। एक दिन अकबर ने कहा–"कल हमारे दरबार में कोई तिलक लगाकर न आये तिलक हमें अच्छा नहीं लगता। अगर कोई तिलक लगाके कल आया तो उसके मस्तक को गर्म लोहे से दाग दिया जायेगा।"

बादशाह के हुक्म पर दूसरे दिन कोई तिलक लगाकर नहीं आया पर उस दिन मधुकर शाहजी ने रोज से बड़ा मोटा तिलक लगाया। राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण जी के साहित्य–सदन, झांसी से प्रकाशित श्री मुंशी अजमेरीकृत–'मधुकरशाह चरित्र' में इस घटना का बड़ा ही सजीव वर्णन है। उस काव्य का अंश थोड़ा सा हम यहाँ पर दे रहें हैं–

तिलक लगाते नित्य माथे पर छोटा सा। उस दिन नाके से लगाया बड़ा मोटा सा।।
तब बुलाया निज शूर सरदारों को। विक्रमी बुन्देलों के घंघरों को पवांरो को।।
बोले मैं स्वधर्म से कभी न मुख मोड़ूंगा।
डर से किसी के कभी तिलक न छोड़ूंगा।।
तब क्या इसे मैं तप्त लोहे से दगा लूंगा। बुन्देल वंश में क्या दाग मैं लगा लूंगा।।

भाल दगने के पूर्व उसे मार डालूंगा। तिलक निकालेगा तो खड्ग मैं निकालूंगा।।
मार बादशाह को भले ही मर जाऊँ। अन्त मरना है क्यों न धर्म पर जाऊँ मैं।।
तुमको निदेश है पीछे पैर देना तुम। मेरे मरने पे आगरे को लूट लेना तुम।।
कहते हुए यों कुछ क्रोध उन्हें आ गया। दीप्त मुखमण्डल पे दूना दर्प छा गया।।
अरुण नयन हुए और ओंठ फड़के। बातें सुन रूप देख सेना–भट भड़के।।
कांपने लगे वे वीर वीरता के जोश में। दांत पीस होठों को चबाते हुए रोष में।।
बोले सब शूरवीर आज्ञा शिरोधार्य है। आपने कहा जो वह कार्य अनिवार्य है।।
किन्तु उतना ही नहीं अधिक करेंगे हम। ढूँढ़ ढूँढ़ शत्रुओं को मारके मरेंगे हम।।
तोपें झुका देंगे हम किले पे बादशाह के। छोड़ेंगे उसे वे आज भली भांति ढहा के।।
तब रोक बीच ही में बोले नर नाथ यों। वीरों मत भभको अभी से एक साथ यों।।
देखो दरबार में क्या होती आज बात है। क्या है होनहार अभी किसे ज्ञात है।।
तब लौं अशान्त मत होना धैर्य धरना। कोई किसी भांति का उपद्रव न करना।।
समझा बुझा के यों समस्त सरदारों को। साथ ले सुराही और पान बरदारों को।।
मधुकर शाह महाराज दरबार को। चले देखभाल के कटार तलवार को।।
आम दरबार वह भली भांति था भरा। फूला हुआ खेत ज्यों पोसते का हो हरा।।
राजा महाराजा पांच सात नौहजारी थे। थे वजीर उमरा अमीर दरबारी थे।।
तिलक विचित्र ओरछे के नरनाह का। देख चकराया चित्त अकबरशाह का।।
सोचा–भूपवृन्दों ने बुन्देला मिट जायेगा। उद्धत अवज्ञा का अवश्य फल पायेगा।।
बोले बादशाह तब भूप ओर देखके। तिलक लगाने से अवज्ञा निज पेख के।।

अकबर बादशाह ने देखा कि और सभी राजा–महाराजा तिलक लगाकर नहीं आये, एक मधुकरशाह ही तिलक लगाकर आयें हैं। अपनी आज्ञा भंग होते देखकर अकबर को क्रोध आ गया। उसने कड़ककर कहा–"मधुकरशाह ! आप मुझे जानते नहीं कि मैं कौन हूँ। मैने आप सबको कल आज्ञा दी थी कि तिलक लगाकर कोई भी यहाँ न आये। फिर आपने क्यों तिलक लगाया। मेरा हुक्म तुमने तोड़ा है इसलिए तुम बागी हो और सभी राजा देखो तिलक लगा के नहीं आये। तुमने ही मेरा अपमान किया। अब इसका दण्ड तुमको भोगना पड़ेगा।

यह सुनकर मधुकरशाह जी ने बड़ी निर्भिकता से वीरता पूर्वक उत्तर दिया कि मैं जानता हूँ, आप बादशाह हैं। आपका हुक्म भी कल मैंने सुना था। लेकिन आपकी बादशाही से बढ़कर मैं अपने इष्टदेव परमात्मा की बादशाही मानता हूँ। उस परमात्मा का चरण–चिन्ह स्वरूप यह तिलक मस्तक पर धारण करने के लिये मुझे गुरु की आज्ञा है। उस आज्ञा से बढ़कर मैं आपकी आज्ञा को नहीं मानता। मैं प्राणों से बढ़कर धर्म को मानता हूँ।

धर्म मुझे प्राणों से पचासों गुना प्यारा है। धर्म ही तो परलोक का सहारा है।।
धर्म दिव्य दीपक है, मोक्ष की भी राह का। धर्म से नहीं है बड़ा हुक्म बादशाह का।।
जीते जी कदापि धर्म से न मुख मोड़ूंगा। डर से किसी के कभी धर्म को न छोड़ूंगा।।

–"मधुकरशाहचरित" पृष्ठ 32

इस प्रकार मधुकरशाह ने निर्भय होकर ललकारा–"आये, कौन आता है मेरे सामने तिलक

मिटाने को और मस्तक दागने को। मैं आज दिखाऊँगा कि आज भी श्रीरामजी के वंश के वीर क्षत्रियों में क्या ताकत है।" यह वीर–वाणी सुनकर वीर क्षत्रियों का खून खौलने लगा। सभी के दिलों में हिन्दू धर्म का जोश जाग उठा। धन्य–धन्य की आवाजें आने लगी। कोई कहने लगा–एक ओर अकबर शाह और दूसरी ओर मधुकरशाह हैं। दोनों में देखे आज क्या निपटती है।

"ओड़छेश की अशंक बातचीत से। राजा महाराजा हुए चकित सभीत से।।
मौन बादशाह दंग सब दरबारी थे। विस्मित वजीर और उच्च अधिकारी थे।।
देखा सबने कि उग्र ओड़छाधिराज हैं। कुछ कर डालने को उद्यत से आज हैं।।"

अकबर बादशाह बड़ा बुद्धिमान था। उसने जब देखा कि समस्त क्षत्रिय राजे–महराजे भड़क उठे हैं। कहीं सभी बागी न बन जायें–सब एक होकर मुझे और मेरी बादशाहत को नष्ट करने पर न तुल जायें। क्योंकि मैंने तिलक छुड़वाकर सभी के दिलों को ठेस पहुंचाई है। उसी समय अकबर ने कुछ लज्जित होकर बात बदल दी–

"सनाटा सभा का तोड़गूंजा शब्द वाहवाह। बोले बादशाह वाह मधुकरशाह वाह।।
आपने ही नित्य नेम अपना निभाया है। जान पर खेल कर तिलक लगाया है।।
मुझको नहीं है चिढ़ तिलक लगाने से। मैंने तो परीक्षा ली थी हुक्म के बहाने से।।
तिलक बिना है राजो महाराजों का समाज। निकले 'टिकैत' सच्चे सिर्फ एक आप आज।।
बलिहारी आपकी अनोखी आनबान पर। खुश हो गया हूँ मैं सचाई और शानपर।।
मन में जरा भी नहीं मेरे छलछन्द है। सच कहता हूँ मुझे तिलक पसन्द है।।
,आपही के नाम से लगाया जायेगा। "मधुकरशाही" यह टीका कहलायेगा।।

इस प्रकार अकबर शाह के दरबार में महाराजा मधुकरशाह की जयध्वनि से आकाश गूंज उठा। दूसरे दिन से सब राजा लोग तिलक लगाकर आने लगे। वैष्णवों का ऊर्ध्वपुण्ड्र दरबार में अमर हो गया।

ऐसे शूरवीर और धर्मवीर महाराजा मधुकरशाह जी कितने ऊंचे भक्त थे, यह भी भक्तमाल में वर्णन है। उनकी भक्ति का वर्णन तथा उनके द्वारा अनेकों चमत्कार जो हुए उनका गुणगान बुन्देलखण्ड में सदा होता आया है। एक बार तो उन्होंने भगवान के मन्दिर का द्वार फिरा दिया था। ओड़छा में यह प्राचीन मन्दिर व्यास मौहल्ले में आज भी विद्यमान है, उस मन्दिर में आप स्वयं कीर्तन करने जाते थे। भगवान के आगे जाकर भक्तजनों के बीच में पैरों में नूपुर बांधकर नृत्य करते थे। आप पदगान करते हुये बेसुध हो जाते थे बाजे बजाने वाले संगीतज्ञ भी सब अनुरागी थे। उस समाज में जिस समय महाराजा स्वयं नृत्य–गान करते तो विलक्षण ही आनन्द बरसता था। एक दिन महाराजा साहब को ऐसा राजकाज आ गया कि अवकाश न मिलने से समय से न पहुंच सके। मन्दिर में भगवान की शयन आरती हो गई। रात्रि विशेष हो गयी थी, फिर भी राजा साहब अपना नित्य नियम पूर्ण करने के लिए मन्दिर के पीछे जाकर कीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे। उस दिन देर के कारण सब लोग जा चुके थे। केवल थोड़े से भक्तों के बीच में उस सन्नाटे के समय ऐसा कीर्तन जमा कि सबके नेत्रों में प्रेमाश्रु बह चले। राजा साहब की भी उसी दिन विलक्षण प्रीतिधारा बही। उस समय सहसा भगवान् प्रकट होकर राजा साहब

के साथ नृत्य करने लगे। उस समय देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की। उस पुष्प वर्षा में फूल सोने के थे। उसी समय मन्दिर द्वार घूम गया। जिस तरफ मन्दिर द्वार था उधर मन्दिर की पिछवाई हो गई और जिधर पीछे राजा साहब कीर्तन करे रहे थे उधर मन्दिर का द्वार हो गया। यह ऐतिहासिक घटना है, ऐसी घटना नामदेव जी के जमाने में पंढरपुर में भी हुई थी। वहाँ भी द्वार अब तक पीछे की ओर विद्यमान है, इस प्रकार महाराजा मधुकरशाह की भक्ति ने भगवान् को प्रत्यक्ष प्रकट कर लिया था। आकाश से देवताओं ने जो दिव्य स्वर्ण के फूल बरसाये थे वे राज्य में अभी तक सुरक्षित रक्खे हैं।

भक्त महाराणी श्री गणेशकुवँरिजू देवी

परम भक्त महाराजा मधुकरशाह जी की महाराणी श्री गणेशकुवँरिजू देवी की भक्तिमय गाथा प्राचीन ग्रन्थ भक्तमाल में विस्तार से वर्णन की गई है। यहां पर उनका संक्षेप में परिचय मात्र देना है। श्री महाराणी जी परम भक्त की मूर्ति थीं। वह बड़ी ही उदार दानी थीं। उनके सम्बन्ध में वर्णन है कि—

कुँवरि गणेशदेवी ऐसी धर्मशीला थी। धर्ममयी धर्म की कला थी या लीला थीं।।
पालतीं ब्रतों को पूर्ण नियम निभातीं। दया और सेवा की सुमूर्ति कहलातीं वे।।
माता अन्नपूर्णासी प्रजा को लिये गोद में। पालती थी नाना भांति गोद में विनोद में।।
बांटती थीं अन्न वस्त्र दोनों धन हीनों को। देती मनों चून चीटियों को और मीनों को।।
अतिथि अनाथों को सुभोजन करातीं थीं। नित्य ही सहस्त्रों पक्षियों को वे चुगाती थीं।।
नित्य प्रति ब्रह्मभोज होता रनिवास में। होम प्रतिपक्ष में सुयज्ञ प्रतिमास में।।
मन वच काय रघुनाथ की उपासना। करतीं थीं त्याग भोग वैभव की वासना।।
सरस बजातीं वे सितार और वीणा थीं। रम्य पदरचना में परम प्रवीणा थीं।।
राम चरणारविन्द चित्त चंचरीक था। चित्त चला दर्शनों को रोकना न ठीक था।।
जाके अयोध्या में चिरकाल वे पड़ी रहीं। राम रघुनाथ जी के दर्श को अड़ी रही।।
आखिर को एक दिन सरयू नहाते में। जल में प्रवेश कर डुबकी लगाते में।।
सांवली सलोनी मूर्ति गोदी बीच आ गई। भक्ति महाराणी की विशिष्ट इष्ट पागई।।
अवधपुरी से इस भांति लेके राम को। पुष्य के नक्षत्र में वे लौटीं निज धाम को।।
ओड़छे में कुँवरिगणेशजू के हाथ की। स्थापित है मूर्ति वही राम रघुनाथ की।।
ऐसे महाराज और ऐसी महाराणी हों। फिर उनकी यों क्यों न अमर कहानी हो।।

—"मधुकरशाहचरित्र" पृष्ठ 14

श्री मधुकरशाह से आज्ञा लेकर जब महाराणी अयोध्या गई और भगवान के साक्षात्कार के लिये सरयू तट पर तपस्या करने लगीं तो महाराज ने पत्र लिखा—"भगवान् को लेकर ही आना।" महाराणी ने व्रत—अनुष्ठान किया। एक दिन उन्होंने अत्यन्त निराश होकर सरयू में डूबने का निश्चय कर लिया। जब वे स्नान करने के बहाने ज्यों ही डूबने के लिये गहरी धारा की ओर बढ़ी कि उसी समय एक मूर्ति उनकी गोद में आ गई। उस दिव्य मूर्ति को देखकर उनको

आश्चर्य हुआ। वही श्रीराम जी की मूर्ति लेकर वे ओड़छा आईं। राजधानी में बड़ा भारी महोत्सव मनाया गया। वहां पर मन्दिर बनवा कर प्रतिष्ठा की गई। वह मन्दिर और वही दिव्य मूर्ति श्रीराम जी की आज भी ओड़छा में विराजमान है। यात्रीगण उनके दर्शनार्थ जाते रहते हैं। जब से श्रीराम जी का मन्दिर बना तब से ओड़छा तीर्थ सा बन गया। इसी से राजधानी टीकमगढ़ में बनाई गई।

वह श्रीराम जी की मूर्ति खड़ी थी। महाराणी भी खड़े–खड़े ही सब सेवा पूजा अपने हाथ से करतीं थीं। चार–चार घंटे खड़े–खड़े रानी को बड़ा कष्ट होता। एक दिन भगवान ने पूजा करते समय रानी से कहा कि "बैठ कर सेवा पूजा किया करो। तुम्हारा कष्ट मुझसे सहा नहीं जाता।" तो महाराणी ने कहा–"प्रभो! आप जब खड़े हैं तो मैं आपके सामने कैसे बैठ सकती हूँ। स्वामी खड़ा रहे और सेविका बैठे, यह तो अनुचित है।" भगवान ने कहा–"अच्छा तो हम बैठ जाते है।" ऐसे कहकर श्री भगवान की मूर्ति जो खड़ी थी, वह आसन लगाकर बैठ गई।

इस घटना को देखकर सर्वत्र कोतूहल हुआ। जो दर्शनार्थी कल भगवान को खड़े देख गये थे, आज बैठा देखकर चकित हो गये। को भी विज्ञानवेत्ता न समझ सका कि ऐसा कैसे हो गया। खड़ी मूर्ति कैसे अपने आप बैठ गयी आज भी उस मन्दिर की चौखट पर चांदी के अक्षरों में लिखा यह दोहा अंकित है–

"मधुकरसा महाराज की रानी कुँवरि गणेश।
अवधपुरी से ओरछे लाई अवधनरेश।।"

श्री मधुकरशाह जी के 12 पुत्र हुए थे–श्री रामसिंह, श्री वीरसिंह, श्री इन्द्रजीत सिंह आदि। अककबर के दरबार में जहाँ और सब राजा खड़े रहते थे वहाँ श्री मधुकरशाहजी के पुत्र श्री रामसिंह, श्री वीरसिंह जी को सुन्दर आसन मिलता था।

महाराजा श्री वीरसिंह देव जी

ओड़छा के यह महाराजा बड़े प्रतापी हुए हैं। सन् 1605में इन्होंने मथुरा में विश्रामघाट पर 81मन सोने का दान किया था। आपने श्रीकृष्ण जन्मभूमि का मन्दिर मथुरा में बनवाया था जिसको तोड़कर औरंगजेब ने मस्जिद बनवाई थी। वहाँ पर अभी हाल की खुदाई में मन्दिर के भग्नावेशष का कुछ भाग भूमि के नीचे से निकला है कि–यह मन्दिर ओड़छा के राजा वीरसिंह ने बनवाया था। काशी के दैनिक समाचार पत्र "आज" में ता. 22–9–60 के अंक में समाचार छपा है कि–"मथुरा जन्मभूमि में अभी हाल में खुदाई में प्राचीन जो भाग भूमि से मन्दिर का सिंहासन आदि निकला है उससे पता चलता है कि ओड़छा के महाराजा श्री वीरसिंह जी ने विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में बनवाया था।

इन्हीं के दरबारी राजकवि श्री केशवदास जी थे।

इनके दान की किर्ति आज तक सर्वत्र लोग तीर्थों में विशेष सुनाया करते हैं कि–

बलि कोई कीरति लता, कारण करी द्वै पात।
सीची वीरसिंह देव ने, जब देखि कुम्हिलात।।

श्री वीरसिंहदेव जी ने सम्बन्ध में इतिहासकारों ने बहुत कुछ पराक्रम वर्णन किया है। आपने अकबर के परम मित्र अबुलफजल को युद्ध में मारा था। जिसे सुन अकबर बहुत रोया था। बीसों बार आपने बड़े–बड़े युद्ध जीते थे। राजसिंह को भी एक बार हराया था। युद्ध करते समय आप श्री सीताराम नाम रटते रहते थे। महाकवि केशव ने इनकी वीरता पर लिखा है कि–

वीरसिंह देव पौर बाहिर दपटि, दौरि बैरिन की सेन बीसक कचौंदिगो।
कंचन बुन्देलमणि सेहनि ढकेलि कोटि हाथी पेल चौकीदार बेयवे मैं सौदिगो।।
दुन्दुभी धुकार सौ हजार को चुनौती देत, भीम को सो कामकरि रेतखेत खौंदगो।
रामसी को नाम लेत धाम सी जुन्हाई माझ, तामसी तिपुर का तनाव तंबु रौदिगो।।

(1)

आवत हो जीते जोर दक्षिण अभय पद लैनहार दक्षिण नगर को।
सालनि ज्यों तालिनि ज्यों "केशव" तालमनि ज्यों, तेरे भुवपाल सालईश धीरधर को।।
दोनों छांड़ि छितिनाथ एक जु सलीम साह महाबीर वीरसिंह सिंघ मधुकर को।
अबुलफजल मदमत्त गजराज आज मारि डारयो सखा सेख साहि अकबर को।।

(3)

दानिन में बलि से विराजमान जिन पहं मगिवे को आवत त्रिविक्रम तनक से।
पूजत जगत्प्रभु को द्विजन की मंडली में, 'केशोदास' देखो मानो सौनक सरक से।।
जोधन में भरत भगीरथ से व्रत धर, पारथ से विक्रम समर्थ सु बनक से।
मधुकर शाह सुत महाराज वीरसिंह, भूतल के राजन में राजत जनक से।।

श्री महाराज वीरसिंह के चरित्र पर एक पुस्तक विस्तार से अंग्रेजी में छपी है। आपकी भक्ति और वीरता तथा दान तीनों ही अनुपम हैं। मथुरा में श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर केशवदेव का मन्दिर बनवाया था। इससे आपकी पूर्ण भक्ति का परिचय मिलता है तथा युद्ध के समय श्री सीताराम नाम रटते थे इससे आपकी हार्दिक श्रीराम भक्ति थी। तथा श्रीराम जी इष्ट थे, ऐसा पता चलता है। आपकी माता श्री महाराणी गणेशदेवी जब श्रीराम जी को अयोध्या लाईं और महल में मन्दिर बनाया तो पुत्र का भी श्रीराम भक्ति में लीन होना स्वाभाविक है। साथ ही आप जनक के समान जगत से अनासक्त रहते थे।

महाराजा श्री पहाड़ सिंह देव जी

सन् 1941 में ओरछा के महाराज हुये हैं। इन्होंने दक्षिण हैदराबाद में गोडबाना विजय किया था। वहाँ पर यवनों का राज्य था–गौवों व अबलाओं पर अत्याचार हो रहे थे। गायें हलों में जोती जाती थीं। वहाँ के दुःखी लोगों ने आकर आपसे प्रार्थना की। आपने उसी दिन प्रतिज्ञा की कि जब तक गोंडवाना का उद्धार न कर लूंगा तब तक अन्नजल ग्रहण नहीं करूँगा। उसी समय सेना सजाकर गये और वीरतापूर्वक गोंडवाना विजय कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया था। गऊ ब्राह्मणों को दुःख से छुड़ाया था। यह परम प्रतापी वीर हुए हैं। यह भी श्रीराम जी के अनन्य भक्त थे। अंग्रेजी ग्रंथ 'वीरसिंहचरित्र' में आपका वर्णन आया है।

'कनकभवन' के प्रेमी महाराजा और महाराणी

ओड़छे से जब हटाकर राजधानी टीकमगढ़ लाई गई तो वहाँ भी सभी महाराज भक्त होते आये। सन् 1874 में महाराजा श्री प्रतापसिंह जी देव हुए। उनकी महाराणी श्री वृषभानुकुँवरिजू देवी ने सन् 1891 (वि.सं. 1948 वैशाख शुक्ल 6) में प्राचीन कनकभवन महन्त श्री लक्ष्मणदास जी को धन देकर प्राप्त किया और वर्तमान कनकभवन का निर्माण कराके कनकभवन के भगवान की सेवा के लिए 12 ग्राम जिला जौनपुर में खरीद कर लगाये।

कनकभवन के प्रबन्ध के लिए वृषभानु धर्मसेतु प्राइवेट ट्रस्ट स्थापित सन् 1908 में किया, जिसके प्रेसीडेन्ट उनके पति श्री सवाई महेन्द्रप्रताप सिंह जू देव हूये। उन्होंने जनकपुर में श्री जानकी मन्दिर का निर्माण कराया। उन्हीं महाराजा महाराणी के दो पुत्र हुये तथा तीन कन्यायें हुईं। प्रथम पुत्र राजा बहादुर श्री भगवन्तसिंह जी देव हुये। बड़े संतसेवी तथा अनन्य भक्त थे। दूसरे पुत्र श्री महाराजा सावन्तसिंह जी हुए जो विजावर राज्य में गोद गए। वे ही विजावर नरेश हुए। इनकी दो महाराणियां हुईं। पहली महाराणी श्री रत्नकुँवरि जू ने चित्रकूट में विशाल श्री रत्नेश्वर भवन बनाया, जिसमें प्रभु की सेवा का सुन्दर प्रबन्ध है। दूसरी महाराणी श्री कंचनकुँवरिजू हुईं जिन्होंने अयोध्या में ऋणमोचन घाट पर कंचनभवन बनवाया। इनकी बनाई 'कांचन कुसुमांजलि' नामक पुस्तक प्रकाशित है। श्री राजाबहादुर भगवन्तसिंह जी के चार पुत्र हुए। प्रथम महाराजा श्री वीरसिंह जी, दूसरे सवाई राव राजा श्री कर्णसिंह जी तथा तीसरे राव राजा श्री जयेन्द्रसिंह जी, चौथे राव राजा श्री महेन्द्रसिंह जी हुए। महाराजा श्री महेन्द्रप्रतापसिंहजू देव के पश्चात महाराजा श्री वीरसिंहदेव जी राजा हुए वे ही ट्रस्ट के द्वितीय प्रेसीडेन्ट हुए जो कि सन् 1930 से 1956 तक रहे। इनके भ्राता सवाई राजा श्री कर्णसिंह जी के दो पुत्र हुए। बड़े सवाई राव राजा नरेन्द्रसिंह जी व दूसरे श्री रामबहादुर ज्ञानेन्द्रसिंहजी हुए जो दिगोड़ा गोद गये। श्री राव राजा जयेन्द्रसिंह से एक पुत्र श्री राव राजा प्रद्युम्नसिंह जी हुए श्री राव राजा महेन्द्रसिंह के एक पुत्र राव राजा दिनेशसिंह जी हुए। महाराजा वीरसिंह जी की प्रथम महाराणी नंदकुँवरि साहिब से एक पुत्र सवाई महेन्द्र महाराजा श्री देवेन्द्रसिंह जू देव हुए जो सन् 1956 में गद्दी पर बैठे और यही ट्रस्ट के तीसरे प्रेसीडेन्ट हुए। इनके एक पुत्र राजा बहादुर मधुकरशाह जू देव हुए जो श्रीराम चन्द्रजी ओड़छा के अनन्य भक्त हैं और वर्तमान में कनकभवन ट्रस्ट के अध्यक्ष हैं।

***

अध्याय 9

भक्तों पर कृपा

(क) सन्त, महन्त भक्तगण-

मन्दिर निर्माण के पहले के भक्त

अयोध्यापुरी के प्रचीन प्रसिद्ध संत श्री वेदी सम्प्रदायाचार्य श्री रामप्रसाद जी महाराज 'दीनबन्धु' तो नित्यप्रति 'कनकभवन' में आते और गद्‌गद् होकर प्रेम से तानपूरा लेकर पैरों में नूपुर बांधकर नृत्य-गान किया करते।

श्री रामचरितमानस के प्रसिद्ध तिलककार स्वामी श्री रामचरण दास महाराज 'करुणासिन्धु' जी भी बराबर आते और शरदोत्सव पर तो विशेष रूप से वह नृत्य करते।

महामहोपाध्याय श्रीमान् पं. उमापति जी त्रिपाठी "कोविद" भी अपने विद्यार्थियों को लेकर वेदध्वनि करते हुए 'कनकभवन' में आते और कनकभवनविहारी को आशीर्वाद देते थे। वह वात्सल्यरस के उपासक थे।

भक्त पलटूदास जी तो निःशब्द रात्रि में एकान्त में आते और यहाँ ध्यान करते तथा प्रभु को गीत गा-गाकर रिझाया करते थे। पलटू का मन इसी कनकभवन के आंगन में वश हुआ और प्रभु का अनुभव यहीं प्राप्त हुआ।

एक बार श्री उमापत्ति जी त्रिपाठी के पास उस समय के बलरामपुर नरेश राजा दिग्विजयसिंह जी ने एक परम कलाकार गायक को भेजा। वह कथिक साज-समाज के साथ त्रिपाठी जी के पास आया और बोला हमारा सब खर्च राजा साहब देंगे। हमें उन्होंने आज्ञा दी है कि आपके पास रहकर हम आपको पद-गान सुनाया करें, तो श्री त्रिपाठी जी ने उस कथिक को उसी समय कनकभवन भेज दिया और कहा-हमारे इष्टदेव को रोज गान सुनाओ। यही हमारी सेवा है।

यह श्री उमापति जी त्रिपाठी उस समय भारत में अद्वितीय विद्वान थे। उनके सदृश प्रतिभाशाली पंडित दूसरा कोई नहीं था। यह दिग्विजयी थे। बड़े उदार दानी भी थे। यह अपने को श्रीराम जी का पुरोहित मानते थे। बड़े-बड़े राजा आपकी पूजा करते थे। साहित्य के साथ ही संगीत विद्या में भी बड़े निपुण ज्ञाता थे। कई बार श्री कनकभवनविहारी ने आपको बड़े विचित्र चमत्कार दिखलाये थे।

उन्हीं दिनों अयोध्या में जयपुरनरेश आये। उन्होंने संतसेवा में रामकोट की भूमि लखनऊ के नवाब से खरीद कर साधु महात्माओं को कुटी बनाकर भजने करने के लिए प्रदान की। रामकोट मुहल्ला 'कनकभवन' के चारो ओर बहुत दूर-दूर तक कहा जाता है। श्री रामानन्दीय सन्त श्री त्रिलोकीदास जी ने उस भूमि को अपने अधिकार में लेकर कुटी बनायी। मुसलमानों ने बड़ी-बड़ी बाधायें उपस्थित की। किन्तु, यह सब दुःख झेलते हुए वे कुटी में रहने लगे। इन सन्तजी के तिरोधान के पश्चात् इनकी गद्दी पर प्यारेराम जी महन्त हुए। उन्होंने सन्तों को अयोध्या में बसने के लिए खूब उत्साहित किया इनके समय में सन्तों की संख्या खूब बढ़ी।

इन्हीं के आदेश से महात्मा श्री शीलमणि जी ने कनकभवन के आगे कोने पर अपनी कुटी बनाई जो लालसाहब के मन्दिर के नाम से पीछे स्थान बन गया। इसी प्रकार महात्मा श्री युगलरसिक जी ने कनकभवन से थोड़ी दूर पर कुटी बनाई जो पीछे श्रृंगार भवन कहलाया।

महन्त श्री प्यारेराम जी के प्रबन्ध के समय में 'कनकभवन' फिर जगमगा उठा। शान्ति, प्रेमाभक्ति और वैराग्य की मूर्ति सदृश संतजन आ–आकर अवध में साधना करने लगे थे। उन महात्माओं के भजन–प्रभाव से और रामनाम कीर्तनध्वनि से अवध गुँजने लग गयी थी। वे सब संत अपना जीवन–धन कनकभवन को मानते। उन दिनों के प्रसिद्ध संतों में महात्मा श्री रघुनाथदासजी बड़ी छावनी वाले महाराज की 'कनकभवन' में अपार श्रद्धा थी। वे नित्य प्रति अपने शिष्य द्वारा 'कनकभवन' का चरणामृत मंगाकर पान किया करते थे। उसके बिना पान किये वे कुछ भी जल तक नहीं ग्रहण करते थे।

ऐसे ही श्री स्वामी युगलानन्द जी महाराज तो कनकभवन के अत्यन्त प्रेमी थे। उनकी उपासना ही महल की थी। उनको भी 'कनकभवन' सरकार ने पूर्ण आनन्दानुभव कराया था। ऐसे ही श्री बाबा 'बनादास' जी भी थे। जिन्होंने आजन्म कुटी के बाहर निकलना पसन्द नहीं किया था। वे भी सबको यही उपदेश दिया करते थे कि–'कनकभवन' दर्शन करने जाया करो और कनकभवन में जब जाना तो वहाँ सरकार को मूर्ति मत समझना। वे साक्षात् प्रभु प्रकट हुए हैं। जो लोग उनको मूर्ति समझते हैं वे अपराधी हैं।

श्री रसिकअली जी पर कृपा

श्री जनकराज किशोरीशरण 'रसिकअली' जी का जन्म काठियावाड़ में सुदामापुरी में हुआ था। सन् 1818 में नागर ब्राह्मण कुल में यह उत्पन्न हुए थे। लड़कपन में ही अकेले भागकर अयोध्या आये और सर्वप्रथम यह 'कनकभवन' में दर्शन करने आये। वहाँ बैठे–बैठे इनको समाधि लग गयी। ध्यान में देखा कि भगवान दिव्य कनकभवन में अपनी सखी परिकर के साथ लीला विहार कर रहे हैं। जब समाधि से जगे तो यह प्रभु के विरह में रोने लगे। इसी समय वहाँ महात्मा राजराघवदास जी आ गये। बालक की ऐसी भक्ति देखकर वे प्रभावित हुए और इनको अपने आश्रम पर ले आये। राजराघवदास जी दास्यभाव के उपासक थे। उन्होंने दास्यभाव की उपासना बताकर दीक्षा दी। पीछे रसिकअली जी ने कहा–मुझे ध्यान में सखी भाव ही प्रिय लगता है। इसलिये आप सखी भावना का सम्बन्ध बताइये। तब श्री राजराघवदास जी ने इन्हें करुणासिंधु जी महाराज के पास भेजा। उन्होंने इनको सखीभाव व श्रृंगाररस की उपासना का सम्बन्ध प्रदान किया।

यह निरन्तर 'कनकभवन' के युगलविहार की भावना में निमग्न रहकर अनुभवी संतों में प्रसिद्ध हो गये। उसी समय टिकारी के राजा आकर इनके शिष्य हुए। श्री रसिकअली जी ने राजा साहब को 'कनकभवन' में अष्टकुंज निर्माण कराने की प्रेरणा की। राजा साहब ने दस हजार रूपये इस कार्य के लिए इनको दिये। रसिकअली जी बड़े समारोह के साथ कार्य प्रारम्भ किया। माधुर्यमय केलिकुंज बनावाना था। इसीलिये कुंज बनवाने के समय आपने सब सामान मधुर ही रक्खा। मजदूरों तथा राहगीरों को नये–नये पीले वस्त्र पहनाये गये। मजदूरों को नाना प्रकार के मिष्ठान पकवान कई बार खिलाये जाते। उनके अंगों में इत्र आदि लगाये जाते।

औजारों में नूपुर बांधकर कार्य कराया जाता था। जिससे कार्य के समय नूपुर बजते रहें। बड़ा ही सुन्दर शब्द और दृश्य था।

जितने लोग कुंजों के बनने को देखने आवें उनको सबको मधुर प्रसाद खूब ही दिया जाता था। इस अयोजन से आधे से अधिक रूपया नींव में ही खर्च हो गया। उन्हीं दिनों श्रीराम विवाह का अवसर आ गया। उसी रूपये में से आपने कनकभवन में बड़ा भारी आयोजन करके विवाहोत्सव मनाया। विवाह–लीला के पश्चात् संतों का विशाल भंडारा किया। दस हजार रूपये तो सब खर्च हो गये पर अभी अष्टकुंजों मेंसे एक कुंज का द्वार मात्र ही बन सका था। अब तो लोगो ने इनकी खिल्ली उड़ाना प्रारम्भ कर किया। इनके गुरुजी भी उनके अनुभवहीन कृत्य से अप्रसन्न हुए। राजा साहब भी इनके द्वारा अपव्यय देखकर खिन्न हुए। फिर और रूपया देकर कार्य और कराने का साहस वे नहीं कर सके। वह कार्य अधूरा ही रह गया। जब लोग इनसे पूछते कि इस प्रकार कार्य करने से आपको क्या मिला। तो यह कहते– हमारे प्रभु को इससे बड़ा सुख प्राप्त हुआ है। इस बात को सब लोग नहीं जान सकते। प्रभु ने तो पीछे हमसे कहा है कि–"हम अपनी माधुर्यकुंज, जैसी कि आप बनवाना चाहते थे, वैसी कुंजें हम कलियुग में आगे होने वाले विमुख लोगों को नहीं दिखलाना चाहते थे। इसीलिए हमने यह लीला रची है और कुंज पूरे नहीं हो पाए हैं। आप खेद न करें।"

श्री रसिकअली जी ने 24 ग्रन्थ बनाये हैं। कई ग्रन्थों में 'कनकभवन' का विचित्र मर्म वर्णन किया है।

प्यारे प्यारी को झुलावैं, गावैं रस भरी तान।
'कनकभवन' में कनक हिंडोरा रवि शशि जोति लजावैं।
चहूँदिशि ललित वितान वादले झालर झमकि सुहावैं।।
इस घन गरजत रिमझिम बरसत, मृदु मृदंग धुनि छावैं।
"रसिकअली" प्रिया प्रियतम ऊपर बार–बार बलि जावै।।
सजनी मोरे मन मन भावै, हँसि दोउन की लपटान।।प्यारे।।

अहा! कितना सुन्दर वर्षाऋतु के समय में झूलोत्सव का वर्णन है। कितनी सरस भाषा हैं आपने होली लीला का वर्णन बहुत ही विचित्र किया है। आपके ग्रन्थ पढ़ने योग्य हैं।

–होरी खेलें श्री राजदुलारी।
अपने पिया पर उमगि उमगि उर, मारत रंग भरी पिचकारी।।
चन्द्रकला विमलादि अग्र अलि इत उत सैन सजी है अपारी।
कंचन किंकिन नूपुर को रव, पूरि रहयो पुर में दिसि चारी।।
बाजत चंग उमंग बढ़ावत, गावत गीत रसीली गारी।।
उड़त अबीर गुलाल छुयो है नभ, बहि चली रंग तरंगिनि भारी।
दश दिशि फूलन गेंद कुमकुमा, फेंकत दौरि प्रच्गारि प्रचारी।
"रसिकअली" उत जय रघुवर की, इत बोलहिं जय जनककुमारी।।

पिताभाव वाले सन्त को प्रभु का प्रणाम

एक बार महात्मा श्री मुरारिदास जी 'कनकभवन' में आये थे। वे वात्सल्य रस के उपासक, बड़े ही विह्वल भाव में रहने वाले प्रेमी महात्मा थे। उनके हृदय में दशरथ जी वाला भाव था। वे प्रभु को अपना बालक मानते थे। जिस समय कनकभवन में वे पधारे तो उनके आते ही कनकभवनविहारी का मुकुट गिर पड़ा। वहाँ पर अच्छे-अच्छे सिद्ध महात्मा बैठे हुए थे। सबने एक स्वर से कहा कि प्रभु ने पिता मानकर मुरारिदास जो को प्रणाम किया। इसीलिए मुकुट गिरा हैं भगवान से मुरारिदास की दृष्टि मिलते ही मुकुट गिरा था और हजारों सर्वदा आते जाते रहे कभी आज तक ऐसा नहीं हुआ।

श्री दीनबन्धु जी पर कृपा

अयोध्या में बड़ी जगह के बिन्दु आचार्य श्री स्वामी रामप्रसाद जी महाराज "दीनबन्धु" के चरित्र में भी 'श्रीकनकभवन' का वर्णन आता है। श्री महाराज कनकभवन में नित्य आते और वहाँ पर नित्य कुछ सेवा भी करते थे। यह महाराज सम्वत् 1700 में हुए हैं।

'कनकभवन' रासस्थली, करहिं मारजन नित।
जनकलली पदकमल में, अलिवत अमली चित्त।।

—*"श्रीरामराजचरित" पृष्ठ सं. 53*

आपका मन भ्रमर के समान रसलोलुप होकर कनकभवन के आंगन को रासस्थली मानकर उसका मार्जन करने नित्य आता था। एक बार वि. सम्वत् 1787 में साक्षात् श्री किशोरी जी ने प्रकट होकर आपके मस्तक पर तिलक लगाया था। 'महाराजचरित' में वर्णन है—

सम्बत सत्रह सौ सत्तासी। भई ललित लीला सुखरासी।।
सुखदायक गायकन समाजा। जुरे महल में उत्सव काजा।।
सीता जन्मोत्सव सुखदाई। जन्मकथा हूँ भई सुहाई।।
मिथिलापुर के सन्त महन्ता। आवहिं लै सौगात अनन्ता।।
सो सब 'कनकभवन' पहुंचावैं। सियाराम हित लाड़ लड़ावैं।।
तेहि आवेस निसा सब बीती। भूली नित्य नेम की रीती।।
द्वै घटिका जब दिन चढ़ि आवा। दशमी तिथ बुधवार सुहावा।।
उठे आप हिय भर अकुलाई। को हम कहाँ न मन ठहराई।।
भई अबार सेवा के ताई। सो बड़ त्रास ग्लानि उर छाई।।

वैशाख शु. 9 को श्रीसीता जन्मोत्सव में आप 'कनकभवन' में आनन्द में ऐसे निमग्न हुए कि रात्रि भर बीत गई। प्रातःकाल जब दिन चढ़ आया तब आपको सेवा-पूजा का स्मरण आया। श्री किशोरी जी की सेवा में त्रुटि न हो यही भय छा रहा था। शीघ्रता में स्नान करके जब अपने मस्तक पर तिलक लगाया तो आधा तिलक श्वेत ही लगा सके। बीच में लाल श्री लगाना भूल गये। जब आप सेवा-पूजा आरती करने लगे, उसी समय श्री जी से आप विलम्ब हो जाने की क्षमा मांग रहे थे। करुणा उमड़ रही थी मन में। बस, उसी समय सहसा दिव्य कनकभवन की स्वामिनी प्रकट हो गईं। साक्षात् दर्शन दिया। वार्तालाप कर आशीर्वाद दिया। उनके भाल पर तिलक अधूरा देख हँसते-हँसते श्री जी ने अपने करकमल से बीच में बिन्दी लगा दी। इस

प्रकार से उनकी तिलक परम्परा चली। बिन्दु–सम्प्रदाय ही प्रचलित हो गया। उनका वह तिलक जीवन भर कभी मिटा नहीं।

श्री तपस्वी जी पर कृपा

एक बार गर्मी के दिनों में 'कनकभवन' में पुजारी जी शयन कराते समय जल रखना भूल गये। उसी समय रात्रि में एक बजे अपनी छावनी में बैठे हुए तपस्वी जी भजन कर रहे थे। उनको ध्यान में ऐसा प्रतीत हुआ कि– "भगवान कहते है कि मुझे प्यास लगी है।" परन्तु, इस पर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। पश्चात् फिर थोड़ी ही देर में एक किशोर रूप में बहुत ही सुन्दर बालक प्रकट हुआ। उसकी आकृति 'कनकभवनविहारी' की सी थी। वह बालक भी यही शब्द बोला कि मुझे प्यास लगी है। पुजारी ने आज गर्म–गर्म खिचड़ी भोग में खिलाई और पानी भी नहीं पिलाया। तुरन्त आदृश्य हो गया। तब तत्काल ही तपस्वी जी महाराज अपनी छावनी से दस साधुओं को लेकर 2 बजे रात्रि में कनकभवन पहुंचे। कनकभवन के महन्त श्री प्यारेराम जी को जगाकर उन्होंने कहा कि आज हमारे पास प्रभु गये थे और कहते थे कि हमको प्यास लगी है। महन्त प्यारेराम जी ने पुजारी को जगाकर पूछा कि–"क्या तुमने आज शयनकुंज में जल नहीं रक्खा है।" पुजारी घबड़ा कर उठा। पूछने पर वह भयभीत होकर कहने लगा–"हाँ महाराज, खिचड़ी गर्म भोग लगाई थी और मुझे भी ऐसा ही ख्याल है कि सब सेवा कर चुकने के पश्चात् मैं जल रखना भी भूल गया।"

श्री महन्त जी ने उसी समय मन्दिर खुलवाया। मन्दिर में जल नहीं था। जल रखकर सप्रेम अर्पण किया गया और फिर मन्दिर बन्द कर दिया गया तब तपस्वी जी लौटकर अपने स्थान पर आये।

इस प्रकार की हजारों घटनायें भक्तों के साथ होने लगीं। जनता ऐसी बातें प्रत्यक्ष देखकर श्रद्धालु बन गयी। 'कनकभवन' सबका कण्ठहार बन गया। सर्वत्र 'कनकभवन' विहारी के ही गुण गाते हुए संत नजर आते थे।

श्री रूपकला जी को माला प्रदान

एक बार श्री रूपकला जी महाराज जब नवयुवक थे अयोध्या आये, और विचारने लगे कि प्रभु ने हमें स्वीकार किया है या कि नहीं। इसका निर्णय कैसे हो? उन्होंने निश्चय किया– कनकभवन में आरती के पश्चात जो प्रभु की माला है वह तो उपस्थित किसी प्रधान श्रेष्ठ महात्मा को यहाँ नित्य प्रसादरूप में दी जाती है। यदि आज हमें वह माला मिले तो हम समझें कि प्रभु ने हमको स्वीकार कर लिया।

उन दिनों श्री महाराज जगदेवदास "श्री सियाअली" जी पुजारी थे। आरती के बाद उन्होंने माला हाथों में ले ली। सैकड़ों बड़े–बड़े व्यक्ति उपस्थित थे। पुजारी जी सबको देखते हुए आगे बढ़ते आये और इन नवयुवक गृहस्थ श्री रूपकला जी के गले में डाल दी। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी दिन श्री रूपकला जी ने कहा–हमने आज निश्चय किया था कि यदि माला मिलेगी तो हम समझेंगे कि हमें प्रभु ने अंगीकार कर लिया है। अब हमें पता चला कि प्रभु हमारे हो गये और हम प्रभु के। अब कोई संदेह नहीं रहा।

श्री कनकभवन महिमा

श्रीहरि गुरु करकंज पहिं, अर्पित मन बच काय।
'रुपिया' सोई तुच्छ अति, कृपया लें अपनाय।।
अपने उर की माल दे, उर की जानि सुभाय।
'कनकभवन' में करि कृपा, लीन्ह आपु अपनाय।।

श्री सूरकिशोर पर कृपा

'श्री रसिकप्रकाश भक्तमाल' में वर्णन है कि—प्राचीन महात्मा मामा प्रयागदास के गुरु श्री सुरकिशोर जी मिथिला से अयोध्या आये थे। वे श्री सीताजी को अपनी पुत्री मानते थे जब वे आये तो लकड़मण्डी में ठहरे। अयोध्या का अन्न—पानी भी नहीं लेते। जब वे कनकभवन पहुंचे तो उस समय पुराना कनकभवन था। भगवान् के तथा श्रीसीताजी के वस्त्राभूषण साधारण देखकर उनको बड़ा दुःख हुआ। वे बोले—हमारे मिथिलेश की राजकुमारी की यह दशा। बस, उसी समय मिथिला लौट पड़े। मार्ग में उसी पुराने कनकभवन तथा साधारण वस्त्रों पर इतना सोच और दुःख करते गए कि मार्ग में चलने में खाना—पीना भी छोड़ दिया। चौथे दिन जब वे रात में पेड़ के नीचे सो रहे थे तो श्री किशोरीजी दिव्य आभूषण धारण कर प्रकट हुई और खूब समझा बुझा कर पिता को प्रसन्न किया। श्री सूरकिशोर जी श्री रामजी से कुछ भी याचना नहीं करते थे। मुक्ति भी नहीं चाही। वे कहते हैं—

"निबही तिहुंलोक में सूरकिशोर, विजै रण में निमि के कुल की।
जस छाय रहो सतदीप ललाम, कथा कमनीय सदा थल की।।
मिथिला वासि राम सों चाहै कछू, तो उपासक कौन कहै भल की।
जिनके कुल बीच सपूत नहीं, करै आस दमादन के बल की।।

श्री युगलप्रिया जी पर कृपा

भोग ही मानत रोग सहज वैराग मन,
शान्तिमय कर्म कर पूर्ण निहकाम।
श्री सुनेना रानि भली, सुकृत बेलि फूली फली,
जनमी सिय पाये जिन लीनो वर राम।
"युगलप्रिया" सरिता बन, बाग तरु तड़ाग राम,
नारी नर सुघर सरल ज्ञानी जे वसंत ग्राम।।

इस प्रकार श्री महारानी जी की पुत्री श्री युगलप्रिया जी भी बड़ी ही तपस्विनी हुईं। उनके सम्बन्ध में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्री वियोगीहरि जी ने 'युगलप्रियापदावली' ग्रन्थ का संकलन करके प्रकाशित कराया है, वे लिखते हैं—

धरी राजसी दूरि भक्ति रस रंग विकासिनी।
करि कठोर तप रमति तीरथनि तेजप्रकाशिनी।।
चढ़ि खांडे की धार विसुख जन गति मति लोपी।
संतन हरि ते अधिक मानि, वैष्णव ध्वज रोपी।।

श्री कनकभवन महिमा

श्री ब्रजराजेश्वरि कपा बल, श्रुति दुर्लभ आनन्द पगी।
"युगलप्रिया" मीरा सदृश, युगल रूप रुचि रस रंगी।।

देवी श्री वृषभानुकुँवरि जी महारानी का समस्त परिवार ही भक्त हुआ। महाराणी के पुत्र भी धार्मिक हुए।

श्री महारानी जी की इच्छानुसार महाराजा ने उनके नाम से, परामर्श करके, धर्मसभा ओड़छा कायम की। उसका नाम 'श्रीवृषभानुसेतु प्राइवेट ट्रस्ट' रखा गया। इसमें प्रेसीडेन्ट स्वयं श्री महाराजा साहब हुए। वह ट्रस्ट ही श्री प्रेसीडेन्ट महोदय के आदेशानुसार अब तक सुचारू रूप से कनकभवन की व्यवस्था करता चला आ रहा है और इस ट्रस्ट का पूर्ण प्रबन्ध गद्दीनशीन प्रेसीडेन्ट के द्वारा सुचारू रूप से चल रहा है।

श्री रघुनाथदास जी पर कृपा

श्री बाबा रघुनाथदास जी वि. सं. 1817 में प्रकट हुए थे। इनकी अद्भुत साधना और चमत्कारों की कथायें ग्राम–ग्राम में प्रचलित हैं। इनकी स्थापित की हुई बड़ी छावनी अयोध्या में प्रसिद्ध है। इसका जीवनचरित्र विस्तार से प्रकाशित है "रघुनाथहाट" नाम से और प्राचीन श्री "रसिकप्रकाश भक्तमाल" जो सम्वत् 1869 का रचा हुआ है, उसमें वर्णन है कि–

अवधप्रसाद ब्रह्मचारी रघुनाथदास,
कृपा अधिकारी नर्म रीति सरसाये हैं।
अवध गलिन विचरत अनुराग भरे,
रसिकन संग रंग मानस छकाये हैं।।
"कनकभवन" जाय लोचन को फल पाय,
दम्पति विलास के प्रबन्ध छन्द गाये हैं।
सरयू के तीर हिये कीन्हों इष्ट ध्यान बैठि,
पुष्पक विमान परधाम को सिधाये हैं।।

अर्थात्– "श्री रघुनाथदास जी महाराज परम प्रतापी हुए हैं। प्रभुकृपा के पूर्ण अधिकारी होकर आपने नर्म सखा भाव प्राप्त किया था। अयोध्या की गलियों में प्रेमोन्मत्त दशा में रसिकों के संग रसरंग में भरे चलते थे। मानस रामायण की कथा का रंग बरसाते थे। एक बार 'कनकभवन' में आपने रहकर साक्षात् श्री सीताराम जी का दिव्य दर्शन कर नेत्रों को सफल किया था। प्रभुविहार के नये नये छन्द आपने 'कनकभवन' में रचे थे। पश्चात् एक दिन सरयूतट पर बैठकर आपने सबके देखते–देखते पुष्पक विमान का आवाहन किया। विमान आया। उसी में बैठकर आपने साकेत यात्रा की।"

कहा जात है–आपने 'कनकभवन' में श्री युगल सरकार के साक्षात्कार के लिए अनुष्ठान किया था। उसी अनुष्ठान के प्रारम्भ करते ही आपको श्री कनकभवनविहारी ने प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन दिया था। तब आपने दिव्य साकेतधाम का दर्शन चाहा। प्रभु ने धाम का दर्शन भी कराया था। इस प्रकार आपके नेत्र सफल हुए थे। आपके बनाये पद भी बहुत सुन्दर हैं। कृपया पद वाला अध्याय देखें।

श्री रघुनाथ दास जी की रचना

दोहा– मन की कौनौं कामना बाकी न रहि गैल।
महाराज दशरथ को देखि छबीलो छैल।।

आपने हरिनाम सुमिरनीं नामक ग्रंथ में बड़ा ही सुन्दर वैराग्य का वर्णन किया है।

बालपने में न वाहन संग अघाय स्वतंत्र ह्वै खेलन पायो।
पाय जुवा धन धाम संबारि न नारिन हू को भयो मन भायो।।
आई जरा बसि औधपुरी में, न राम किया पद में मन लायो।
हा इत को न भयो उत को "रघुनाथ" वृथा नरजन्म गंवायो।।

आपने अपने अयोध्यावास के समय की रामनामकीर्तन, संतसेवा आदि बातों को बड़ा सुन्दर व्यापार का सा रूपक दिखाते हुए एक विनोद भी कविता लिखी है–

घट ही व्यापार 'रामनाम' की खरीद करौं,
धरौं हैं संभारौं कही अन्तहिं न जान हौं।
क्षमा के तराजू पै संतोष सेर पूरो करि,
दया की दुकान पर बैठि अठिलात हौं।।
कहै 'रघुनाथदास' संतन मुख बेंचत हौं,
हाजिर हुजूर में फेरत सकुचात हौं।
होत सुख भारी लाभ दूनों भरी पाऊँ मोहिं,
यही बनिआई बनिआई करि खात हौं।।

महात्मा श्री जानकीप्रपन्न जी पर कृपा

'रसिकप्रकाश' भक्तमाल के अनुसार श्री जानकीप्रपन्न जी महाराज भी कनकभवन के बड़े प्रेमी थे। उसमें वर्णन है कि–

अवध में आये जब अति सुख पाये लखि,
बिपिन प्रमोद छवि रामघाट जानकी।
रसिक समाज सतसंग सुख छवैं नैन,
नीर झरि लावैं सुनि वाणी गुन गान की।
"कनकभवन" लली लाल मुख चन्द्र हेरि,
एकटक रहैं ठाढ़े सुधि न रही अपान की।
बार–बार विधिहि मनावैं वर देहु यही,
सेवैं पदकंज अलि ह्वैके प्रिय प्रान की।।"

कहा जाता है–'कनकभवन' में आपको साक्षात् श्री किशोरी जी ने प्रकट होकर अपने नूपुर प्रदान किये थे। आप कनकभवन में कभी बैठते नहीं थे। सदा खड़े ही खड़े घन्टों एकटक दर्शन करते थे।

श्री जानकीचरण जी महाराज पर कृपा

वह महाराज रसिक उपासना के परम प्रसिद्ध संत हुए हैं। आपकी अनेक चमत्कारपूर्ण

कथाएं प्रसिद्ध हैं। श्री रसिकप्रकाश भक्तमाल में आपका बहुत विस्तार से चरित्र वर्णन है। उसमें एक जगह आया है कि–

कनकभवन नित दम्पति दरस करैं,
शीत उष्ण वरषा न रैनि दिन पेखे हैं।
सेन समै हू में पट खुले तिन पाये,
भयो मदिर प्रकाश लली लाल अवरेखे हैं।।
रंग भरे ऊँच नीच भूमि को न भास जिन्हैं,
राजसुत आप ही बचावत में लेखे हैं।
ग्रंथ हूं में रस अंग सब जिन गाये ऐसे,
नेम प्रेम पूरन रसिक नहिं देखे हैं।।

अर्थात्–चाहे वर्षा हो, चाहे गर्मी हो, भयंकर आँधी हो, चाहे रात्रि हो, चाहे दिन हो, इनका नित्य प्रति "कनकभवन" में जाकर प्रभु के दर्शन करने का नियम था। एक बार बड़ी भंयकर वर्षा हो रही थी। उस दिन आपको शयन आरती के समय पहुंचने में विलम्ब हो गया। घोर वर्षा में समय का पता भी नहीं चला। उधर ऐसी वर्षा में पुजारी जी भी जल्दी शयन कराके सो गये। उस घोर वर्षा में भी आप भीगते हुए जब कनकभवन पहुंचे तो वहाँ अन्धकार छाया हुआ था। इनको बड़ा दुःख हुआ कि आज हमारा प्रण टूट गया। दुःखी होकर लौटना चाहते थें कि उसी समय मन्दिर का द्वार आप से आप खुल गया और मंन्दिर के भीतर दिव्य प्रकाश प्रकट हो गया। श्री कनकभवनविहारी–विहारिणीजू ने अपने परिकर के सहित दिव्य दर्शन दिया।

जब आप प्रेमोन्मत्त होकर चलते थे तो भाव दशा में ऊँची–नीची भूमि का कुआं–खंदक का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था। एक दिन आप कनकभवन आ रहे थे कि मार्ग में आप भटक कर एक गहरे खोदे हुए गढ़े में गिर ही पड़ते किन्तु स्वयं श्री प्रभु ने प्रकट होकर आपको पकड़ कर सावधान किया। आपने शृंगाररस का अंग–अंग अनूठे से पदों में वर्णन किया है। ऐसे नियम और प्रेम दोनों में परिपूर्ण रसिक संत अन्यत्र नहीं दिखाई देते हैं।

महन्त श्री प्यारेराम जी पर कृपा

श्री रसिकप्रकाश भक्तमाल में कवित्त सं. 353 में वर्णन है कि–

"कनकभवन" लली लाल के उपासी इष्ट,
सेवा सुखराशी प्रेम पूरन लसन्त हैं।
परम गंभीर हिय बसे रघुवीर नीति,
संयुत शरीर तैसे गुण हू अनन्त हैं।।
आठो याम दम्पति बदन को निहारे रहैं,
सबको विचारि काज करत तुरन्त हैं।
रसिक अनन्य जेते सकल प्रसंसत हैं,
बड़े बड़भागी प्यारेराम जी महन्त हैं।।

श्री कनकभवन महिमा

कानकभवन वासी सन्त और महंत जेते,
भये और होहिंगे जे अब वर्तमान हैं।
चरणकमल रज वंदत हौं सब केरे,
महल के चेरे तेऊ विश्व के प्रधान हैं।।
अलि रूप ह्वै के अन्तरंग सुख लूटत हैं,
द्विधा रूप सबको कहत जे सज्ञान हैं।
वृक्ष लता गुल्म तृण, भूमिका लौं चेतन हैं,
जिनके ह्रदय में सदा दम्पति को ध्यान हैं।।

श्री कनकभवन के प्राचीन महन्त श्रीरामप्यारे जी को भगवान बड़े–बड़े चमत्कार दिखाया करते थे। महात्माजन उनके अनेकों चरित्र सुनाते हैं परन्तु नित्य के ऐसे सैकड़ों चरित्रों का कहाँ तक वर्णन किया जाय। कहा जाता है कि प्रभु के लिये आपके एक सेवक जो लखनऊ से आये थे, बहुत सुन्दर मिठाइयाँ बनवाकर लाये थे लेकिन 'कनकभवन' विहारी की शयन आरती होकर मन्दिर बन्द हो चुका था। श्री रामप्यारे जी के मन में रात्रि में बड़ी उथल–पुथल मची कि बड़ी सुन्दर मिठाइयाँ हैं, कब सवेरा हो और कब प्रभु को भोग लगावें। रात्रि में दो बजे श्री कनकभवनविहारी प्रकट हो गये और बोले– मुझे वह मिठाइयाँ अभी भोग लगाइये, ऐसे कहकर प्रभु अदृश्य हो गये। उसी समय मन्दिर खोलकर भोग लगाया गया। इस प्रकार कनकभवन में भगवान साक्षात् हैं तथा कनकभवन के नौकर चाकर, पशु–पक्षी, वृक्ष तक सब प्रभु को परम प्रिय हैं। वह सब जगत के वन्दनीय हैं। उनके प्रभु कृपा से दो रूप हो जाते हैं। एक रूप देखने में आता है और दूसरा रूप प्रभु की अन्तरंग सेवा में रहता है।

श्री रघुवरदास जी पर कृपा

प्राचीन महात्मा श्री रघुवरदास जी महाराज ने कनकभवन में रहकर श्री मन्त्रराज का अनुष्ठान किया था। श्री रामसखे जी से आपने रसिक सम्बन्ध प्राप्त किया था। 'कनकभवन' में एक बार जब आप जप कर रहे थे तो सहसा मानसी भावना में मन लय हो गया। आपको नित्य धाम के दिव्य कनकभवन का दर्शन हुआ और दिव्य लीला में प्रवेश हो गया। आप उसी सेवा में वहाँ लवलीन हो गये। यहां तक कि आपकी समाधि 5 दिन तक बराबर लगी रही। आपको बहुत हिलाया–डुलाया गया, पर आप नहीं जगे। 5 दिन के बाद ध्यान टूटा। आप मानसी ध्यान साधना के पूर्ण सिद्ध हो गये थे। प्रभु से आपका साक्षात् वार्तालाप होता था। श्री रसिकप्रकाश भक्तमाल में वर्णन है कि–

'रघुवरदास बड़े भावुक प्रवर नित,
कनककभवन मधि कुंजन में बसे हैं।
परारति सिन्धु में मगन मन मीन जिमि,
क्षणिक वियोग होत ताप मन लसे हैं।।
युगल चरित्र महा माधुरी को पान करैं,
श्याम गौर रूप मोहजाल बीच फंसे हैं।

जानकी चरण विरचित ग्रंथ बल पाय,
मानस छकाय और रंग में न धंसे हैं।।"

श्री महात्मा ठाकुरदास पर कृपा

यह महात्मा भी कनकभवन में रहकर मधुकरी वृत्ति से भजन करते हुए तप करते थे। रसिक प्रकाश भक्तमाल में इनका विस्तार से चरित्र आया है कि–

"ठाकुरदास रसिक मोहनदास जी के शिष्य,
भाविक अनन्य रस उज्जवल निधान हैं।
'कनकभवन' बसि मधुकरी वृति गही,
ताही में रसिक जनहू को सनमान हैं।।
संत चरणामृत के शीशे भरि राखैं सन्त,
भक्त जो प्रसाद ताको मानत प्रधान हैं।
शील क्षमा विरति दया प्रतोष सम दम,
नीति प्रीति रीति लीन्हें दम्पति को ध्यान हैं।।"

यह सन्तों का चरणामृत ले लेकर बड़ी शीशी भरकर रखते थे। यही पीते थे और अधिकारियों को पिलाते थे। सन्तों के उच्छिष्ट प्रसाद को ही यह प्रधान प्रसाद मानते थे। एक बार सरयू जी में अपने शालिग्राम भगवान–जो गुरूजी के दिये हुये थे–उनको स्नान करा रहे थे। स्नान कराते समय में उछल कर शालिग्राम गहरी धारा में चले गये, फिर वे नहीं मिले। आपने दुःखी होकर अन्नजल त्याग दिया। 8 दिन अन्नजल के बिना रोते बिलखते पड़े रहे। 8 दिन के उपवास के पश्चात् श्री कनकभवनविहारी प्रकट हुए और समझाया कि शालिग्राम में और हमारे में तुम भेद मत समझो। हमारे रूप में तुम्हारी पूर्ण दृढ़ता नहीं थी इसी लिये हमने यह लीला रची है। प्रभु की कृपाकटाक्ष से आपका मन शान्त हो गया उसी समय से श्री कनकभवनविहारी के रूप में अखण्ड आसक्ति हुई। जब प्रभु चले गये तो प्रातःकाल अयोध्या के समस्त रसिक इकट्ठे होकर आये। सबने समझाया कि अन्नजल ग्रहण करो, उपवास त्याग दो। आपने सन्तों की तथा प्रभु की आज्ञा से उपवास त्याग दिया। फिर आनन्दपूर्वक श्री कनकभवनविहारी–विहारिणी की सेवा में आजीवन लगे रहे।

भक्त श्री मोहन जी पर कृपा

यह श्री मोहन जी भक्त ऐसे हुए हैं जिनकी भक्ति ने सन्तों को मोहित कर लिया था। श्री रसिकप्रकाश भक्तमाल में लिखा है कि–

"मोहनलाल अवधपुरी में लली लालन की,
मोहनी लखई सो कहे में नहीं आई हैं।
'कनकभवन' में समाज रंग होत तहाँ,
जाय शीश नाय निज मण्डली बनाई हैं।।
कोई तानपूरा और मंजीरा करताल ढोल,
मधुर मृदंग संग सारंगी बजाई है।

करिके अलापचार राग रागनि उचारि,
तरल तिल्लानेन की झरी सी लगाई है।।
लखनपुरी में राम राम हू को भेद पायो,
रसिक गुरु की दाया सोऊ इत ही लही।
रही कछु वासना वृन्दावनविहारी और,
अवधविहारी प्रेमसागर में सो वही।।
संग के सहाई जे महाई रामप्रेमी तेऊ,
संग पाय रामघाट मंदिर सुधा गही।
'कनकभवन' लली लाल पदकंज छाड़ि,
मोहन की प्रीति काहू और ठौर ना रही।।"

परम भक्त श्री मोहन जी लखनऊ के बड़े धनी परिवार के थे। आपको किसी प्रेमी भक्त द्वारा श्रीकृष्ण भक्ति का रंग लगा था किन्तु लखनऊ में ही फिर एक रामरसिक आचार्य महात्मा श्री ललीमोहिनी जी ने श्रीराम के रहस्यमय चरित्रों का श्रवण कराया। उन्हीं रसिक गुरु की दया से अयोध्या में आप आये। यहाँ कनकभवनविहारी ने आपको रात्रि में ऐसा दिव्य दर्शन दिया कि उसी समय से आप वृन्दावनविहारी की भक्ति त्याग गर अचल भाव से श्रीअवधविहारी की सखी बन गये। कनकभवन में आप अपने मित्रों की मण्डली बनाकर संगीत का आयोजन करने लगे। नित्यप्रति साजबाज के साथ आप प्रभु के आगे नये-नये राग, अनुराग में भरकर गान करते थे जो अत्यन्त ही सुन्दर थे तथा नृत्य भी इतना मनोहर करते थे कि प्रभु की माला प्रसन्नतावश आप से आप आपके नृत्य के समय टूट पड़ती थी। आपके नृत्य की झांकी का रसिकप्रकाश भक्तमाल में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है-

घूँघरू पगन बांधि नृत्य जब करैं फूल,
जिमि पग परैं तन श्रम न लखे परैं।
भाव में अनेक भेद भरचि रचि पद गावैं,
बैठे सन्तजन सब चित्र सों लख्यों करै।।
दम्पति की छवि देखि देखि के उमग,
पराभक्ति को प्रकाश नैन अँसुवन सों भरैं।
अति निरमोही तेऊ मोहित ह्वै आंसू धरैं,
मोहन की मोहिनी में और धीर को ढरें।।

दिव्य रथ पर दम्पति

अयोध्या के प्रसिद्ध बाबा श्री रघुनाथदास जी महाराज जिन्होंने बड़ी छावनी स्थापित की थी एक समय मांझा में रहते थे। उस समय संत-सेवा का उनका व्रत था। वे सदा संतों को उत्तम भोजन कराने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। इससे उनका नाम संत सेवा में सर्वप्रधान माना जाता है। प्रसिद्ध होने के कारण संतजन अधिक से अधिक संख्या में आते रहते थे। श्री धीरमदास जी महाराज की बड़ी जमात भी वर्षाभर 4 महीने आप ही के स्थान में रही थी। हजारों

संत नित्य प्रसाद पाते थे, कोइ अभ्यागत संत भूखा न रह जाय यह उनका व्रत था। वे सबको भोजन कराकर पीछे रात्रि में प्रसाद पाते थे। पचास टोकना केवल चावल बनते थे।

एक दिन कोठारी ने आकर कहा—महाराज, कोठान में अन्न नहीं रहा। कल के लिये कुछ भी नहीं है, क्या आज्ञा है कैसे काम चलेगा? श्री महाराज ने उत्तर दिया कि—श्री सीताराम जी का भण्डारा है। वही सब प्रबन्ध करेंगे, तुम जाओ। कोई चिन्ता मत करो। परन्तु, आज रात्रि में हम भोजन नहीं करेंगे। इस प्रकार कहकर महाराज श्री सीताराम जी का ध्यान करने लगे।

सन्ध्या समय आया। कुछ अँधेरा होने पर सहसा बहुत सुन्दर पवन चलने लगी। सुगन्ध चारों ओर छा गई। मधुर स्वर से कोयल बोलने लगी, उसी समय बहुत सुन्दर चार पहिये की गाड़ी (रथ) में बैठ कर श्री सीताजी के सहित प्रभु पधारें उनकी गाड़ी में मोहरों से भरी थैली रक्खी हुई थी। सहस्त्रों स्वर्ण मुद्रायें लेकर महाराज जी के आगे रख दीं। महाराज ने पूछा—कि आप कहाँ से आये हैं। तो बोले हम कनकभवन से आयें हैं। हमारे पिता ने थैलियाँ आपके लिये भेजी हैं, कि आप संत सेवा में इनको लगा दें।

महाराज ने समझा कि कोई जमींदार के यह राजकुमार हैं। मालूम होता है कि इनका नया विवाह अभी हुआ है इसी से पत्नी भी साथ में हैं। परन्तु उन दम्पति की दिव्य सुन्दरता देखकर आपको बार—बार सन्देह होने लगा कि कहीं प्रभु तो नहीं है। परन्तु वह दम्पति वहाँ से उठकर चल दिये और देखते—देखते घोड़े गाड़ी सहित अदृश्य हो गयें तब सब सन्तों को पता चला, महाराज जी ने कहा—श्री कनकभवनविहारी सरकार आये थे। कनकभवन में पूछा गया। पर वहाँ कोई भी आकर नहीं ठहरा था। इस घटना के पश्चात् जब रात्रि में सोये तो स्वप्न कें श्री कनकभवनविहारी श्री सीताराम जी प्रकट हुये और साथ कहने लगे कि—हमहीं आपकी चिन्ता दूर करने को गये थे और साथ में श्री जनकराज नन्दिनी श्री किशोरी जी थीं।

यह चरित्र श्री प्रेमदास जी रामायणी मानस मार्तण्ड के द्वारा प्राप्त हुआ था। यह प्रसिद्ध घटना है। अयोध्या के पुराने सन्तजन जानते हैं।

दिव्य दर्शन और कृपा के संकेत

अयोध्या श्री जानकीघाट के श्री 108 पूज्य श्री रामपदार्थ जी 'वेदान्ती' महाराज के ह्रदय में कनकभवनविहारी की अनन्य भक्ति थी। वे इनकी ही प्रेरणा से सदा से प्रत्येक कार्य में सफल होते आए। वे नित्य नियम से अपने स्थान का कार्य रोककर कनकभवन में अवश्य आते थे, उन्होंने बताया कि एक बार कनकभवन में जब वे दर्शन करने गये तो उनको मन्दिर में प्रभु के दिव्य दर्शन हुये थे। कमल के आसन पर श्री सीताराम जी को दिव्य रूप में देखा। उसी दिन से आपकी पूर्ण श्रद्धा हुई, जब किसी कार्य के सम्बन्ध में कुछ आज्ञा लेनी हो तो आप कनकभवन में बैठकर प्रभु से मानसिक रूप से पूछते थे। उधर से कभी श्री किशोरी जी कभी श्रीप्रभु हाथ का संकेत करते हैं वह मुसकान या चिन्तवन द्वारा प्रश्न का उत्तर दे देते थे। इस प्रकार के और भी अनेक चमत्कार आपने देखे थे बताये नहीं जा सकते।

(ख) गृहस्थ भक्तगणों पर कृपा-

आगरा के भक्त पर कृपा

मेरा विश्वास है कि श्री कनक भवन बिहारी बिहारिणी श्री विग्रहरूप में जीवन्त व साक्षात विराजित हैं ओर मुझे समय–समय पर कृपापूर्वक जीवन्तता के प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन मैं जनसाधारण के मार्गदर्शन एवम् कल्याण हेतु प्रकाशित कर रहा हूं।

मैंने सर्वप्रथम वर्ष 1980 में दर्शन किये। वर्ष 1982 में दोबारा अपने परिवार व सास श्वसुर के साथ अयोध्या गया। हनुमान गढ़ी से बाहर आने पर समय दोपहर 12:05 हो रहा था। साथ में एक पण्डित बजरंगी हनुमान प्रसाद थे। वह बोले अब कनक भवन जाने का कोई फायदा नहीं है। दर्शन 12:00 बजे बन्द हो गए होंगे। अनायास ही मुंह से निकला चलो तो सही, दर्शन भी होंगे और प्रसाद भी मिलेगा। कनक भवन पहुंचने पर पता लगा कि रसोई बनने में देर होने की वजह से लखनऊ के किन्हीं भक्त द्वारा किया हुआ भण्डारा का भोग लग रहा है, अतः अभी परदा है भोग के पश्चात् दर्शन होंगे। लगभग 12:30 पर परदा होने पर दर्शन मिला। इसके पश्चात् बाहर मौजूद पुजारी जी बोले आप कहां से आये हैं, परिवार सहित प्रसाद ग्रहण करके ही जाना। इस निमन्त्रण पर अनायास ही आंखों में आंसू आ गए। कनक बिहारी सरकार ने तो माँ बाप से भी बढ़कर ख्याल रखा। इसके पश्चात् लगभग वर्ष में एक बार का क्रम अयोध्या आने का चल पड़ा। कनक भवन सरकार के दर्शनों के बिना अयोध्या आना निरर्थक लगता था।

एकबार सायंकाल के समय सरकार के समक्ष प्रस्तुत गायन में कोई बाहर के भक्त बड़े मधुर स्वर में एक भजन प्रस्तुत कर रहे थे। मैं सपत्नीक वहीं बैठा हुआ था कि ह्रदय में विचार आया कि इस अवसर पर गोस्वामी तुलसी दास का विनय पद 'कब हुंक अम्ब औसर पाइ' प्रस्तुत होवे तो अच्छा लगे। यकायक गायक भक्तजी ने जो भजन वह प्रस्तुत कर रहे थे वह बीच में छोड़ दिया ओर 'कबहुंक अम्ब औसर पाई' वाली विनयपद प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। मैं अपनी विह्वलता रोक नहीं सका ऐसी कृपा ऐसी करूणा ऐसी मनोभिलिक्ति आकांक्षा पूर्ति। पाठकों के समक्ष एक अन्य बात रखना चाहूंगा कि उन गायक को कब हुंक अम्ब औसर विनय पद शायद पूरा कंठाग्र नहीं था और पुस्तक उस समय नहीं थी, अतः उन्होंने उसकी 2–3 पंक्तियों के बाद पुनः अपना पुराना भजन उठा लिया।

एक अन्य अवसर पर वर्ष 2001 सरकार के श्रृंगार में शयन आरती के पूर्व एक सुन्दर गेंदा के फूलों की लम्बी माला धारण की हुई थी, अन्य कोई माला श्रृंगार में नहीं थी और वह मौसम भी गैंदे के फूलों का नहीं था। मन में भावना उठी की बहुत सुन्दर बिना मौसम के ही माला धारण की हुई है, बहुत सुन्दर श्रृंगार है आज यह माला प्रसादी रूपी में बिना मांगे प्राप्त होवे तो यह माला श्री हनुमानबाग में हनुमानजी के श्री विग्रह पर धारण करायी जा सके, कितना मधुर संयोग होगा। कुछ क्षणों के पश्चात् पुजारी जी अन्दर गए, परदा किया, शयन आरती की व्यवस्था करके शयन आरती की और फिर माला लिए हुए बाहर आकर बोले यह प्रसाद आप ले जाएं। मैं तो हतप्रभ था इतनी सूक्ष्म मनोकामना पूर्ति देखकर। तुरन्त माला लेकर श्री हनुमान बाग आया वहां पुजारी जी शयन आरती का प्रबन्ध कर रहे थे उनको माला दी, बताया कनक भवन सरकार ने भिजवाई है। पुजारी जी ने वह माला हनुमान जी को धारण करवा कर शयन

आरती की और माला धारण किये ही शयन करवा दिया। अगले दिन लगभग 11:00 बजे प्रातः हम लोगों को वापस लौटना था तो हनुमान बाग में विदाई से पूर्व प्रणाम करने गये। वहां पर प्रणाम करने के पश्चात् पुजारी जी बोले 'कलरात्रि श्री हनुमान जी की धारण की हुई माला आप प्रसादी के रूप में ले जायें। मेरी तो सब इंद्रियां अवरूद्ध हो गयीं उस समय की लीला देखकर। उस माला को आदर सम्मान के साथ आगरा लाया और आज भी वह माला मेरे परिवार में सम्भालकर रखी हुई है। ऐसी अनेक लीलाएं सरकार करते रहते हैं। ऐसे हैं हमारे कनक भवन बिहारी बिहारिणी। इतनी सूक्ष्म भावना का सभादर केवल वही करने में सक्षम हैं, अन्य कौन करेगा?

—पुरुषोत्तम अग्रवाल, 122, नेहरू नगर, आगरा

कर्मचारी की रक्षा

मंदिर के एक कर्मचारी भगवान की पौशाक एवं लेखा जोखा का कार्य सन् 1987 से कर रहे हैं। अच्छे लोगों का सहायक सिर्फ भगवान ही होता है। अधिकांश लोग ऐसे आदमी को अपने पथ का रोड़ा समझते हैं। खास तौर से तीर्थों में फैला भ्रष्टाचार तो ऐसे लोगों के माफिक आ ही नहीं सकता। एक दिन (ता.—16/10/2000) रात में करीब 8.00 बजे मंदिर का काम काज निबटाकर वे अकेले साइकिल से अपने घर राजघाट की तरफ जा रहे थे कि मंदिर के पश्चिम वाली सूनसान सड़क पर दो आदमियों ने घेर कर उनकी जम कर पिटाई करी। लात घूंसों के अलावा मुख्य वार माथे पर किया गया कि वे माथे की चोट से मर जाय। 'राम बचाओ, हनुमान जी बचाओ' बोलते—बोलते सड़क के किनारे वे ढेर हो गए। खून से कपड़े लथपथ हो गए। उनको मरा जान कर वे आततायी चले गये। पर जिसको भगवान राम बचाना चाहते हैं, उसे कौन मार सकता है।

सौभाग्य से इतने में ही एक बगल के मकान से बच्ची हैण्ड पम्प से पानी लेने निकली। सड़क पर मरा आदमी समझ कर वे जोर से चीखी, तो घर के और लोग निकले। बेहोश अवस्था में उनको घर के अन्दर किया तो पहचान पाए की यह कनकभवन वाले अजय कुमार छावछरिया हैं। उन्होंने मंदिर में सूचना दी और उनको पानी छिड़क कर होश में लाया गया। तदुपरान्त पुलिस में प्राथमिकी भी गुमनाम लोगों के विरूद्ध दर्ज की गई।

सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जिस व्यक्ति के सर पर बाईं आंखों के ऊपरी हिस्से में विधिवत डन्डे और हाथ से मारा गया हो, सर फट कर बेतरह खून बहे, टांका लगाना पड़े, उसको बिल्कुल सूजन दर्द इत्यादि कुछ न हो। माथे की जरा सी चोट होने पर मोटा गूमड़ निकल आता है। उनकी बाईं आंखों में खून भर आया था। आंख के डाक्टर ने कहा हैमरेज है। 7 दिन की दवा से वो खून भी साफ हो गया। न तो आंख फूटी न सर का कपाल! मन्दिर का नियमित कार्य वे अगले दिन भी यथावत करते रहे।

अजय कुमार छावछरिया का विचार है कि मैं जब से अयोध्या आया हूँ अनवरत कनकविहारी जी की पौशाक समेटता हूँ, तो मार पड़ते समय राम जी ने और सीता जी ने अपना पीताम्बर अथवा साड़ी को ढाल की तरह फैलाकर डन्डों और घूसों से मेरी रक्षा की। दूसरा कोई और विकल्प हो ही नहीं सकता था। कालान्तर में श्री राम जी ने हनुमान जी के माध्यम से उनसे तुलसी दास जी के ग्रन्थों का (दोहावली, गीतावली, विनय पत्रिका, कवितावली, हनुमान

वाहक, चालिसा, बजरंग बाण, अष्टक इत्यादि) एवं राम जी व हनुमान जी पर तुलसी साहित्य, वेद–उपनिषदों पर आधारित पुस्तकों का अंग्रेजी में रचना कराया। यह पुस्तकें आज भी उपलब्ध हैं। लेखक की मान्यता है कि मैं इसलिए मरने से बच गया कारण यह श्री राम जी का कार्य करना बाकी था।

श्री अजय छावछरिया मूल बंगाल के निवासी हैं। उनके जीवन में कई घटनाएं बड़ी विचित्र घटी हैं जिससे उनका विश्वास राम जी पर अटूट है। इसी कारण वे 30 वर्ष की उम्र में सदा के लिए अयोध्या आ गये थे। पिता जी स्नेहवश कहते थे कि बेटा तू अकेला जा रहा है, तेरी सम्हाल कैसे होगी तो वे जवाब देते थे कि राम मेरे साथ हैं, आप चिन्ता न करें। सन् 1985 में अयोध्या आए थे उनका अनुभव है कि एक राजकुमार की व्यवस्था एवं सम्हाल उसका राजा पिता भी क्या करेगा जितना मेरे राम ने मेरे लिए किया है। सब बातें प्रकाश में कर देने में सुनने–देखने में अच्छा नहीं लगता, इसलिए उनकी इच्छा है कि कोई बात का जिक्र न किया जाय। इसलिए सिर्फ इस मार वाली घटना के अलावा बाकी सब छोड़ दिया गया है।

कर्मचारी की इच्छा पूरी

मंदिर में कीर्तन करने वाले एक पंडित जी रवीन्द्र पाठक हैं। वे बहुत पहले विअहुति भवन में रहते थे। एक बार (सन् 1965) में वे पति–पत्नी रात में दर्शन कर रहे थे। पंडित जी बड़े सीधे स्वभाव के गरीब ब्राह्मण हैं। उनकी इच्छा मिठाई खाने की हुई, तो उनकी पत्नी ने व्यंग किया कि घर में तो सब्जी के लिए पैसा नहीं है।

जब वे दर्शन करके लौट ही रहे थे कि एक सेठ जैसे आदमी आए और कहा कि पंडित जी मैंने भण्डारा कराया है, प्रसाद ले लीजिए। एक डब्बा दे कर चले गए। घर पहुँच कर रवीन्द्र पाठक ने डब्बा खोला तो आश्चर्य का ठिकाना नही था–उसमें मिठाई बढ़िया सब्जी तथा पर्याप्त पूरियां थीं, कि दो आदमी भर पेट खा लें। यह तो कनकभवनविहारी ही दे गये हैं, उनकी ऐसी मान्यता है।

एक निर्धन भक्त को धनदान

एक बार पं. गंगाधर मिश्र जो रामसनेहीघाट के रहने वाले थे, उनके मन में जगन्नाथ पुरी जाने का संकल्प हुआ। वे बड़े निष्ठावान कुलीन ब्राह्मण थे। वे अत्यंत निर्धन थे पर याचना किसी से नहीं करते थे। उन्होंने 'कनकभवन' के द्वार पर आकर धरना दिया कि 'प्रभो, आप ही मुझे रूपया दीजिये तो मैं अपना संकल्प पूर्ण करूँ।' तीन दिन तक वे अन्न–जल के बिना भूखे–प्यासे पड़े रहे। तीसरे दिन रात्रि में पं. उमापति जी त्रिपाठी को भगवान् ने स्वप्न में कहा– "हमारे द्वार पं. गंगाधर मिश्र पड़ा है–उसको आप 60रूपये कल दे देना। वह सबेरे ही आयेगा।"

और इधर उसी रात्रि में गंगाधर से भगवान ने स्वप्न में कहा कि "हमारे अपने गुरूजी से कह दिया है, कल सवेरे ही तुम जाकर उनसे 60रूपये ले लेना। इतने से ही तुम्हारा सब कार्य हो जायेगा।"

भगवान की आज्ञा पाकर वह मिश्र जी प्रातःकाल होते ही त्रिपाठी जी के पास पहुंचे। इधर त्रिपाठी जी पहिले ही से 60रूपये लेकर बैठे थे कि देखें कौन आता है रूपये लेने। मिश्र जी पहुंचे तो अपना स्वप्न सुनाया। त्रिपाठी जी ने भी अपना स्वप्न सुनाया। दोनों को ही इस घटना

पर बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योकि दोनों का ही कभी परिचय नहीं था। एक दूसरे से अपरिचित थे। इस प्रकार प्रभु सबका सम्मान करते हुये 'कनकभवन' में भक्तों के साथ विहार करने लगे।

छैल–गुण्डा सरकार

रायबरेली के एक भक्त दम्पति जब वृद्ध होने लगे तो उन्होंने अपना सब धन–धान्य लेकर बैलगाड़ी में रखकर अयोध्या को प्रस्थान किया। उनका दृढ़ मत था कि अब दोनों ही मिलकर अयोध्या में खूब भजन करते हुए अन्तिम जीवन व्यतीत करेंगे। दोनों ही स्त्री–पुरुष भक्तीभाव में एक दूसरे से बढ़े चढ़े थे। चलते समय विचार किया कि अयोध्या में कहाँ ठहरना होगा तो स्त्री देवी ने कहा– "बैलों को स्वछन्द छोड़ देना। जिस स्थान पर बैल अपने आप अयोध्या में खड़े हो जायँ वहीं पर रहेंगे।" ऐसा ही किया गया। अयोध्या के बाहर से ही बैलों को छोड़ दिया। गाड़ी खींचते हुए बैले इधर–उधर सड़कों पर आप ही चलने लगे। चलते–चलते वे बैल कनकभवन के अहाते में आकर खड़े हो गये। गाड़ी वहीं खोल दी गई। उस समय पुराना ही कनकभवन था। महन्त लक्ष्मणदास जी ने उन दोनों भक्तों को जगह दे दी। उन्होंने बंगला बनवा लिया। उसी बंगले में दोनों रह कर व्रत पूजा करने लगे। वह देवी भगवान के दर्शनार्थ बड़े–बड़े साधन करती थी। एक दिन स्वप्न में उसने देखा कि– 'कनकभवनविहारी' उससे खूब झगड़ा कर रहे हैं। जैसे ब्रज में श्रीकृष्ण दान माँगते थे वैसे ही छेड़खानी करते देखकर देवी ने कहा– तुम छैलगुण्डापन मुझसे मत करो। तो इस पर भगवान् और भी हँस कर उसे चिढ़ाने लगे।

उसी दिन से वह 'कनकभवन' मे जब आती तो प्रभु को 'छैलगुण्डा सरकार' कहती। लोग उससे पूछते–आज प्रभु को क्या भोग लगाओगी तो वह कहती–मैं अपने छैलगुण्डा को आज मालपुआ बनाके खिलाऊँगी। कभी पकौड़ी। कभी बाजार से नाना प्रकार की वस्तुयें लाके सेवा में लगाती। सब लोग उसे चिढ़ाते। वह बूढ़ी काली–कुरूप थी। पर वह देवी बड़े नखरे के साथ वह कहती कि "मैं अपने छैलगुण्डा को आज देख नहीं पाई, अब जाती हूँ।" तो सब संतजन हँसते थे। धीरे–धीरे प्रभु उससे वार्तालाप करने लगे। वह औरों के लिये सर्वज्ञ बन गई थी। अन्त में एक दिन उससे प्रभु ने कहा "अब के श्रावण में झूला के बाद श्रावणी पूनों के दिन तुम हमारे दिव्यधाम आओगी।" तो उसने पूछा–मैं जब दिव्यधाम में जाऊँगी तो मेरा 'कनकभवन' छूट जायेगा और आप भी तो फिर छूट जायेंगे।" भगवान ने उत्तर दिया "यहाँ से अच्छा वहाँ कनकभवन है। तुमको वहाँ हमही तो मिलेंगे और वहाँ पर यहाँ से अच्छा आनन्द है।" यह बात उसने सबसे कह दी। श्रावण पूर्णिमा आई। सब दिन बीता। उसे हँसते खेलते सन्ध्या हो गयी। लोग कहने लगे, देवी जी झूठ कहती थी कि–प्रभु ने कहा है। इसको तो कुछ भी नहीं हुआ। सन्ध्या के बाद थोड़ी ही देर में शयन आरती का ज्यों ही घण्टा बजा कि भगवान का नाम जप करते ही करते उस देवी का शरीर आपसे आप छूट गया। ध्यान में बैठी की बैठी रह गई। उसका यह चरित्र श्री माधुरी कुंज के अधिमति पूज्य श्री 108 मैथिलीशरण जी महाराज 'सौन्दर्यलता' जी से प्राप्त हुआ। उन दोनों स्त्री पुरुषों ने कनकभवन सरकार की सेवा बड़े ही प्रेम से जीवन भर की थी।

भक्त ठठेर

पुराने कनकभवन की ही बात है। अयोध्या में रायगंज मुहल्ले में एक प्रसिद्ध ठठेर भक्त

रहते थे। वे भक्त जी प्रतिदिन नित्य नियम से कनकभवन दर्शन करने आते थे। चाहे जैसी वर्षा हो, चाहे जैसा उनको ज्वर होने पर वे अपना नित्य नियम नहीं छोड़ते। उनकी इस निष्ठा पर लोग उनकी बड़ाई किया करते थे। एक बार जब उनकी कन्या का विवाह हुआ, तो वे विवाह कार्य में ऐसे बंधन में बँधे रहे कि कनकभवन नहीं पहुंच सके। कन्या का विवाह कार्य जब पूर्ण हुआ तब वे थक कर विश्राम को थोड़ी देर के लिये ऊपर एकान्त कोठरी में चले गये। उस दिन उनका जीवन भर का नियम टूट गया। वे कनकभवनविहारी के दर्शनार्थ नहीं जा सके। अब क्या करें? उनके हृदय में इसी बात की बड़ी पीड़ा थी। वे खाट पर लेटे इसी चिन्ता में थे कि उसी समय वहाँ पर 'श्रीकनकभवनविहारी' प्रकट हो गये। भगवान को देखकर भक्त जी सहसा घबड़ा उठे और बोले 'प्रभु, आप यहाँ कैसे आ गये।' भगवान ने कहा–'भगतजी, हमारे दर्शन को आप नित्य जाते थे, आज तुम नहीं जा सके, तो तुम्हारा नियम न टूटे, इसलिये मैं स्वयं ही चला आया। ऐसे कह प्रभु चले गये।

भगवान की इस प्रेममयी, करुणामयी वाणी को सुन भक्त विह्वल हो गया। उसी प्रेमविभोर दशा में उसने सबको प्रभु के दर्शन की बात सुनाई और कहा कि अब मैंने प्रभु के दर्शन कर लिये – अब मैं जीकर क्या करूँगा– "जिन आँखिन सों वह रूप लख्यो उन आँखिन सों अब देखिये का।"

ऐसे कह दूसरे दिन प्रातःकाल भक्त जी ने शरीर त्याग दिया।

राजा रघुराजसिंह पर कृपा

एक बार अयोध्या में श्री रघुराजसिंह जी रीवाँ नरेश महाराज आये। अयोध्या में उस समय के महात्मा श्री युगलानन्दशरण जी महाराज से आपका विशेष प्रेम था। उन्हीं की सम्मति से आपने 'रामरसिकावली' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी। एक दिन आप 'कनकभवन' में आये। उन दिनों वसंतोत्सव कनकभवन में हो रहा था। उसी समय आपने यह संस्कृत पद रचा और गायकों द्वारा कनकभवन में गवाया गया–

"विलसत रघुवर आलिं बसन्ते।
शीतल मन्द सुगन्ध समीरित, सरयूतटे दिनन्ते।।
अमल कपोले, कुण्डल लोले, विलसत आभा पूरे।
मनसिज केतु विम्ब इव मनसिज मुकुर तले न विदूरे।।
पवन वसादति सूक्ष्म सलिलकण पूरित तनु रति कामं।
ज्ञान वसंतागम सरयूरिव जलैः प्रसिंचति रामं।।
परम विशाल रसाल कुसुमकृत कुंजे मधुकर गुंजे।
सुखयति "रघुराजे" रघुराजं सखिसमूह सुखपुंजे।।"

— रघुराजविलास

श्री प्रयागदास जी पर कृपा

मिथिला के महात्मा श्री सूरकिशोर जी के यह शिष्य थे। यह श्रीराम जी को अपना बहनोई मानते थे। अयोध्या के सखाओं को यह गाली देते थे। दासभाव वाले भक्त इनको मामा कहते थे। 'रसिकप्रकाश' भक्तमाल में लिखा है कि–यह एक बार श्री अयोध्या 'कनकभवन' में अपनी

बहिन श्री सीताजी के पास "चिउरा–मिठाई" लेके गये थे। श्री कनकभवन विहारी विहारिणी ने उनको साक्षात् दर्शन दिया था। यह मामा प्रयागदास जी कविता भी करते थे।

अवध धाम के कनकभवन मां बहिनी मोरी राजे।
'प्रयागदास' का अस बहनोई, शिर पर मुकुट विराजे।।
नीम के नीचे खाट बिछी है, खाट के नीचे करवा।
प्रागदास अलमस्ता सोवै, रामलला का सरवा।।

झाडू भगत का चरित्र

कनकभवन के एक भक्त का विचित्र चरित्र मानसपीयूष के लेखक जी ने अश्रु बहाते हुये बड़े प्रेम से सुनाया था कि उन दिनों एक कायस्थ गृहस्थ सज्जन अयोध्यावास करते थे। उनका 'कनकभवन' दर्शन का नित्य नियम था। वे जब आते तो गद्‌गद् कंठ और पुलकित अंग से विनय करते। उन्होंने कनकभवन में नित्य झाडू लगाने की सेवा प्रारम्भ की थी। परन्तु उनके गुरुदेव ने आज्ञा दी थी कि कनकभवन में जो सेवा में आने वाली वस्तुयें हैं वह सब पात्र भी दिव्य हैं वह पार्षद हैं। उसमें पूज्य भाव रखना। इसीलिए झाडू लगा करके नित्य प्रति वे झाडू को रेशमी वस्त्र में रखकर घर ले जाते और उसी झाडू पर माला–फूल चढ़ाते, आरती करते। उसी झाडू को भगवान की भाँति भोग लगाते, उसी को धोकर चरणामृत लेते। उनके इस भक्ति–भाव की प्रशंसा सर्वत्र फैल गयी थी। वे नित्य झाडू लगाते समय धीरे–धीरे बड़े प्रेम से प्रभुगुण गाते थे। एक दिन मार्ग में राजासाहब "बरांय" मिले। उन्होंने भक्त जी से पूछ–कनकभवन कितनी दूर है। भक्तजी ने कहा यहीं तो पास में ही है। मैं उनका ही झाडू हूँ, अभी झाडू लगा के चला आ रहा हूँ। राजा साहब ने झाडू वाले भक्त की प्रशंसा पहिले ही सुन रक्खी थी, वे उनके दर्शन करना चाहते थे। राजा साहब ने उसी समय झाडू भक्त की परिक्रमा लगाई, दण्डवत् की।

जब उनका अन्तिम समय आया तो प्रभु ने उनसे पहिले ही तिथि आदि बता दी थी। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि कल ही हमारा परमधाम प्रयाण होगा तो वे झाडू को लेकर कनकभवन में आये और कहने लगे–हे प्रभो! इनके लिए अब क्या आज्ञा है। इनकी सेवा पूजा मैं किसे सौपूं कोई इनका अधिकारी नहीं मिलता और मैं इनको छोड़कर आपके धाम में नहीं जाना चाहता। पहिले इनका प्रबन्ध कीजिए। इसके पश्चात् उन्होंने श्री कनकभवनविहारी में मन लीन करके अपना शरीर त्याग दिया और झाडू का क्या हुआ पता नहीं चल पाया। उनके जैसे भक्त आज दुर्लभ हैं। उस रस के अनुभवी अब कहाँ–

छिन छिन पीवैं छकैं नहिं, अमल अमिय सरसाय।
बनादास जिमि गूँग गुड़, स्वाद नहीं कहि जाय।।
युगल चरन सेवैं सदा, 'कनकभवन' के माहिं।
तिनके भागन को निरखि, शिव–विधि हू ललचाहिं।।
'कनकभवन' सेवा कछुक, मज्जन सरजू नीर।
ये दोनों तब पाइये, जब रीझैं रघुवीर।।

पंजाबी संत को दर्शन

कनकभवन–निर्माण होने के कुछ दिनों पश्चात पं0 गंगासहाय जी प्रबंधक हुए थे, उनके समय में परम तपस्वी एक पंजाब के प्रेमी–सन्त आये थे। वे ज्यों ही कनकभवन में पहुंचे उन्हें प्रभु का साक्षात् दिव्य दर्शन हुआ। उनकी विचित्र दशा हो गयी। यहाँ तक कि श्री रामप्रकाश दास उपनाम "रमरमा बाबा" के संभाले भी उनकी दशा नहीं संभली तो उन संत को मूर्छित दशा में ही गाड़ी पर बैठाकर उनके ठहरने के स्थान श्री राधाब्रजराज के मन्दिर पर लाया गया। वे तीन दिनों तक उसी दशा में पड़े रहे। चौथे दिन जब वे होश में आये तो तुरन्त यह गीत उन्होंने बनाकर गाया। वे पंजाबी भाषा में यह गाने लगे–

कनकभवन दा वसैया रे, सजणा आवं।
आव आव रे सजणां, आव, मेरे शिर पै धर पांव।।
जाबी मैंडा जिंद असाडे तूरावै दाराव।
इत्था उत्था जित्थां कित्थां हौं जीवौं तो नाल।।
तू लालों का भी लाल वे दशरथ का लाल।
तन भी देवां मन भी देवां, देवां पंच पराण।।
सच्चा साईं मिला इत्थाई, जन्म करां कुरवाण।
वे सजणां आव, कनकभवन दा वसैया।।

पटना की देवी का साक्षात्कार

श्री रूपकला जी के भक्तों में एक प्रसिद्ध भक्त दम्पत्ति पटना से आये थे। वे दोनों ही स्त्री–पुरुष भक्त थे। वे घर के बड़े आदमी थे। केवल रूपकला जी के सत्संग के लिए अवध आया करते थे। श्री रूपकला जी ने उनको कनकभवनविहारी के दर्शन करने की आज्ञा दी। वे दोनों आये और बड़े प्रेम से दर्शन किया। वे भक्तजी तो स्वाभाविक रूप से खड़े दर्शन कर रहे थे, परन्तु अचानक उनकी पत्नी देवी मूर्छित होकर गिर पड़ीं। सब लोग घबड़ा गये। मूर्छा से देवी जी को जगाया। बड़ी कठिनता से सावधान होने पर देवी जी ने अपने पति को बतलाया मैंने देखा कि कनकभवनविहारी सरकार मुस्करा रहे हैं फिर जब मैं ने किशोरी जी की ओर दृष्टि डाली तो किशोरी जी का रूप दिव्य हो गया। उस दिव्यरूप मैं सहन नहीं कर सकी और मूर्छित हो गयी। मूर्छित दशा में दिव्य प्रकाशमय मणिमय कनकभवन का और दिव्य दम्पति का दर्शन खूब भली प्रकार से मैंने किया। पश्चात् श्री रूपकला जी को जब यह घटना सुनाई गयी तो उनकी विचित्र दशा हो गयी।

यह घटना मैंने अमावा वाले श्री बटोहिया मास्टर जी से सुनी थी। जब मास्टर साहब इस घटना को सुनाने लगते तो उनके रोमांच हो जाते और आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगते थे। वह कहते थे–जब श्री जी की एक उंगली के दर्शन का इतना प्रभाव है फिर सम्पूर्ण दर्शन कौन जाने कितना विलक्षण होगा।

श्री कनकभवन की रहस्यमयी लीला

श्री जानकी घाट निवासी अनन्त श्री पं. रामवल्लभशरण जी महाराज जब अयोध्या आये

और कुछ दिनों तक भगवान की प्राप्ति के लिये पूर्णतप किया तो उनको कई बार श्री हनुमान जी तथा श्री युगल सरकार का साक्षात्कार प्राप्त हुआ। एक बार वि.सं. 1051 में जब कि आप रात्रि में ध्यानमग्न बैठे थे तो श्री हनुमान जी ने आज्ञा दी कि–"आप कल 'कनकभवन' में सायंकाल जाइयेगा।" यह दिव्य वाणी सुनकर आपको अपूर्व आनन्द मिला। प्रातःकाल से ही उत्कण्ठा बढ़ने लगी कि कब सन्ध्या हो, कब कनकभवन में जायें। पता नहीं क्यों आज्ञा मिली है। क्या आज कोई विशेष कृपा होगी।

इस प्रकार आतुरतापूर्वक सन्ध्या समय आप श्री कनकभवन में आये। भवन के द्वार में ज्यों ही चरण रक्खा कि सारा कनकभवन प्रकाशित हो उठा। पृथ्वी, दीवारें, दरवाजे, झरोखे आदि सब चमकते हुए दिव्य मणिमय दर्शित होने लगा। भीतर मंदिर में जब दृष्टि डाली तो वहाँ सिंहासन के स्थान पर रत्नजटित दिव्य शय्या दिखाई दी। उस सेज पर प्रिया प्रियतम गलबांही दिये हुए बातें कर रहे हैं। उनके बोलने, चितवन, मुसकान तथा खेलन बड़ी ही मनोरम थी। अंग–अंग में उनके अपार रूप माधुरी का अवलोकन करके वे आनन्दसिंधु में निमग्न हो गये। उन्होंने देखा–श्री कनकभवनविहारी की सेवा में सखियाँ लगी हुई थीं। कोई श्री स्वामी जी के इतर लगा रहीं थी तो कोई पान खिला रहीं थीं। कोई चंवर कर रही थी। कोई प्रभु को माला पहना रही थी। यह सब दृश्य आप आँख खोले हुए देख रहे थे। घंटों तक यह सब लीला देखने के पश्चात् जब आपने आँखे बन्द की तो ध्यान में भी वही दृश्य दिखाई दिया। ध्यान में वहाँ श्री हनुमान जी भी सेवा में दिखाई दिये। श्री हनुमान जी ने कहा– आज आपने श्रीयुगल सरकार को प्रणाम नहीं किया है सावधान होकर प्रणाम करो। श्री हनुमान जी के आदेश से आपने तत्काल प्रणाम किया। पश्चात् जब आँखें खोली तो आँखें खोलने पर भी वही दृश्य दिखलाई पड़ा।

बहुत विलम्ब के पश्चात् आप कनकभवन से लौटे। किन्तु वह झांकी ज्यों की त्यों दिखलाई देती रही। मत्तगजेन्द्र के मन्दिर तक वही दर्शन होता रहा। आगे बढ़ने पर वह लीला विलीन हो गयी।

यह चरित्र श्री महाराज के पटना से प्रकाशित जीवन चरित्र में विस्तार से पृष्ठ सं. 71 में वर्णित है।

इष्ट परिवर्तन

बम्बई के एक परम विद्वान लेखक और कवि श्री 'दिनेश' जी जिन्होंने 'पंचामृत' ग्रंथ बनाकर गीता प्रेस में प्रकाशित कराया था और भी कई ग्रंथ 'मतवाली मीरा' आदि लिखे थे, उन्होंने कई बार वृन्दावन की यात्रा की थी। उन्होंने कनकभवन में जब श्री कनकभवनविहारी का दर्शन किया तो सहसा उनको दिव्यझलक दिखाई दी। मन सौन्दर्य पर मोहित हो गया। रात्रि स्वप्न में श्री साकेत धाम के दिव्य 'कनकभवन' का दर्शन हुआ। कनकभवनविहारी ने पूर्ण कृपा की। वार्तालाप हुआ। उसी दिन से वे श्रीकृष्ण को त्याग कर श्रीराम रूप का स्मरण करने लगे। यह घटना जब उन्होंने मुझे सुनाई तो मैंने कहा–ऐसा आपको नहीं करना चाहिए। जब आपने श्रीकृष्ण को इष्ट बना लिया तब फिर बदलना ठीक नहीं। तो वे बोले–

श्री कनकभवन महिमा

"कृष्णचन्द्र हू हैं सुधर चंचक चपल अनूप।
पै मन मोहित हवै गयो लिख रघुवर को रूप।।"

यह उनके अन्तिम दिनों की घटना है। उनकी कविता बहुत सुन्दर ओजस्विनी होती थी। उनकी आयु बहुत थोड़ी ही रही। यदि वे कुछ अधिक जीवन पाते तो बहुत से ग्रन्थों की रचना करने का उनका संकल्प था।

बालक की प्राणरक्षा

एक बार पुजारी पं. मूलचन्द्र शर्मा बैठे चरणामृत बांट रहे थे। उसी समय दर्शनार्थियों की भीड़ में से एक लखनऊ के बड़े आदमी का लड़का, जो कि सात वर्ष का था, खेलता–खेलता पीतल के कटहरे पर चढ़ गया। वह कटहरा मन्दिर के सामने दाहिने तरफ लगा रहता हैं वह कटहरा कुछ कार्य से हटता है ढीला रहता है। वह सहारे से अटका रखा था। जब वह बच्चा उस पर चढ़ा और खड़ा होकर उसे हिलाया तो वह कई मन पीतल का बोझ का कटहरा गिर पड़ा और लड़का उसके नीचे दब गया। पुजारी जी देख रहे थे। वह भगवान से प्रार्थना करने लगे कि आज इस बालक की जान बचा दीजिये। कटहरा गिरते ही सब लोग दौड़े। घर वालों ने समझा कि लड़का मर गया। लेकिन कई लोगों ने जब कटहरा उठाकर उस बच्चे को निकाला तो सबके आश्चर्य का ठिकाना न रहा वह लड़का कहता है कि मेरे जरा भी चोट नहीं लगी, न ही कहीं दर्द है। उसके सब अंग की परीक्षा की गई उसे तत्काल दौड़ाया गयां वह मंदिर के आँगन में हंसते हुए खूब दौड़ा। घर वालों ने यह चमत्कार देख कनकभवनविहारी को धन्यवाद दिया और सकुशल घर गये।

श्री जी का पोशाक पहनने का चाव

अभी थोड़े ही वर्षों की बात है कि एक बार श्रीमती रानी साहिबा पयागपुर को श्री कनकभवन विहारिणी जी ने स्वप्न में कहा कि– "मेरी पोशाकों में एक घाघरा पीले रंग का है, उसमें बूटी बनी है। वह हमारी सेवा में नहीं आया।" तब वह श्री रानी साहिबा अयोध्या आईं, और कनकभवन में अपना सब स्वप्न का समाचार सुनाया। तोशखाने से जमादार बुधईराम जी ने उसी समय तोशखाने में खोजकर वही पीला बूटीदार घाघरा तुरन्त निकाल दिया। तोशखाने में सैकड़ों पोशाकें हैं। कोई काम में संयोग से नहीं भी आती है उस घाघरे को रानी साहिबा ने कुछ दिन का रखा जानकर वैसा ही नवीन बनवाकर श्री जी को धारण कराया। वह पहिला घाघरा अपने पास प्रसादरूप में रख लिया।

नेत्रदान

एक बार कनकभवन के पुजारी श्री पं. मूलचन्द्र जी शर्मा का प्रथम पुत्र जो कि 3 वर्ष का था, बन्दर के साथ छेड़खानी करने से उसकी आंख में भयंकर चोट आ गई। उस समय कनकभवन के मैनेजर श्री मुक्ताप्रसाद जी थे। मुक्तप्रसाद जी ने देखा कि बालक की एक आंख बेकार हो गई। बालक को फैजाबाद ले जाया गया। डाक्टरों ने कहा–अब इसकी आंख मारी गयी। यह बात सुनकर पुजारी जी को बड़ा दुख हुआ। वह सोचने लगे कि अब हमारा इकलौता बालक काना हो जाएगा। बालक का जीवन ही खराब हो गया।

वह फैजाबाद से लड़के को लाकर मध्यान्ह में चारपाई पर लेट गये और कनकभवनविहारी से प्रार्थना करने लगे कि "प्रभो! आपके द्वार पर मैं आ पड़ा हूँ। मेरे ऊपर आपने ऐसी अप्रसन्नता क्यो दिखाई कि मेरा बालक काना हो गया।" बहुत व्याकुल होकर प्रार्थना कर रहे थे कि उसी समय तन्द्रा सी आ गई। साक्षात् कनकभवनविहारी प्रकट होकर बोले–"हमारे दरबार में तुम्हारा बालक काना नहीं हो सकता। आँख हमने अच्छी कर दी। चिन्ता मत करो।"

यह शब्द सुनते ही पुजारी जी उठ बैठे। बालक के नेत्रों पर जो घाव होने से पट्टी बंधी थी वह पुजारी जी ने खोल दी। देखा कि न घाव है न कोई नेत्र में दोष। आँख अच्छी भली देखी गई। मैनेजर मुक्ताप्रसाद जी को तथा डाक्टरों को आँख अच्छी देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वह लड़का अभी है।

भगवान दर्शनार्थी के पीछे भागे

जयपुर के श्री वंशीधर जी लड़ी वाले की धर्मपत्नी जिनकी आयु लगभग 55 वर्ष की होगी–वह श्री जानकीघाट पर श्री वेदान्ती जी के यहाँ ठहरी हुई थी। उनके परिवार के सब लोग अन्य कार्य में लगे थे, इसलिए वह अकेली ही कनकभवन में दर्शनार्थ गई। उनको उस दिन दर्शन में बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। पश्चात् जब वे लौटीं तो कनकभवन के फाटक के पास से ही उनको मालूम हुआ कि कोई उनके पीछे–पीछे चल रहा है। थोड़ी देर तक तो वे चलती रहीं, पीछे मंगलभवन के पास पहुंचकर उन्होंने कहा तुम कौन हो जो हमारे पीछे–पीछे चले आ रहे हो, ऐसा कहकर पीछे मुड़कर देखा तो "साक्षात् भगवान् के सौन्दर्य–माधुरी छविकारी पीछे–पीछे चले आ रहे हैं।" उनका रूप देखकर आनन्द का ठिकाना न रहा। भगवान् इतने में आदृश्य हो गये।

अब तो यह उस रूप के दर्शन के बिना व्याकुल हो गई। लौट कर चलीं तो सही पर चलते–चलते रो रहीं थी। उनको जानकीघाट पहुंचते–पहुंचते जोर से रोते–रोते मुर्छा आ गई उनको रोकर बेहोश होते देखकर बहुत से सन्त–महात्मा जुड़ गये। मार्ग मैं भीड़ इकट्ठी हो गयी। इतने में श्री वंशीधर जी भी आ गये। बंशीधर जी ने समझा, उनको कोई रोग हो गया है। वह भी घबड़ा गये। पीछे जब वह होश में आई तब उन्होंने कनकभवनविहारी के दर्शन के अद्भुत रहस्य जो देख था–सुनाकर सबको आश्चर्य में डाल दिया।

परिक्रमा में दर्शन

श्री स्वामी सियाशरण जी महाराज 'मधुकर' के एक शिष्य कनकभवन की परिक्रमा कर रहे थे। श्री किशोर जी की सखीभाव से वे उपासना करते थे। परिक्रमा करते समय उन्होंने देखा कि जिस मार्ग से भगवान को भंडारगृह से भाग थाल आता है उस भंडार से श्री सीताजी को कनकभवन के निज मन्दिर में जाते हुए प्रत्यक्ष देखा। उसी समय से उनकी दिव्य दशा हो गई।

एक दूसरे महात्मा जी 'कनकभवन' के आँगन में स्थापित चरणपादुकाओं की परिक्रमा कर रहे थे, उन्होंने सहसा श्री युगल सरकार को दिव्य रूप से आकाश से आके कनकभवन में भीतर जाते देखा। उनको इस दृश्य को देखने के बाद 10 दिन तक भूख–प्यास नहीं लगी। यह महात्मा अभी विद्यमान हैं। पर उनकी आज्ञा नहीं है। इसलिये उनका नाम नहीं लिखा।

श्री विनायक जी पर कृपा

श्री विनायक जी और श्री विन्दु ब्रह्मचारी जी दोनों ही परम वैराग्यवान् तपस्वी और विद्वान लेखक थे। वे दोनों महानुभाव आकर हनुमानदास के मन्दिर में ठहरे थे। एक दिन अकस्मात हनुमानदास ने इनसे कहा कि "हमारा मकान कल सवेरे खाली कर दो। कल प्रातःकाल हमारे और आदमी आने वाले हैं।" यह सुनकर दोनों ही घबरा गये। अब कहाँ जायें। सोचा कि अब भगवान् हमें अयोध्या में रहने देना नहीं चाहते, चलो अयोध्या से बाहर किसी और तीर्थ में चलें। परन्तु भगवान को उलाहना तो देना नहीं चाहिये। विनायक जी 'कनकभवन' में आये। कनकभवनविहारी के नाम रोते–रोते एक चिट्ठी लिखी कि आप मुझे अयोध्या से धक्का देकर बाहर निकाल रहे हैं, सो अब आपका यह दास कल किसी दूसरे देवता की नगरी खोजने कहीं चला जायेगा आज्ञा दीजिये। बन्द करके वह चिट्ठी पुजारी को दी गई। पुजारी ने भगवान के आगे रखकर फिर लौटकर विनायक जी को दे दी। पुजारी को क्या पता उसमें क्या लिखा था। प्रणाम करके उसी समय विनायक जी उठकर चले और कनकभवन के आँगन में चरणपादुका की परिक्रमा की। उसी क्षण वहाँ पर कनकभवन के उस समय के मैनेजर श्री माधवप्रसाद जी आ गये। हमारे मन में इच्छा हो रही है कि आपको हम कनकभवन में ठहरावें। हम आदमी भेजते हैं, आप सभी अपना सामान उठवा लाइये।" भगवान की प्रत्यक्ष कृपा पर धन्यवाद देते हुए उसी समय दोनों महानुभाव कनकभवन में आकर रहने लगे।

युगल जोड़ी पर कृपा

जब माधवप्रसाद जी मैनेजर थे तो एक दिन देखा गया कि कनकभवन के बड़े फाटक के आगे जो दीवाल है उसके पास फाटक के सामने मुख किये हुए दो युवा स्त्री–पुरुष आके खड़े हो गये हैं। न कुछ बोलते थे न कुछ चाहते थे। वे दोनों सुन्दर स्त्री–पुरुष खड़े ही रहते। रात बीती दिन बीता। सब लोग हैरान थे। मैनेजर ने बहुत कहा। प्रसाद देना चाहा पर इन दोनों ने कुछ भी न खाया न पीया। पत्थर की मूर्ति सदृश खड़े ही रहे। तीसरे दिन, रात्रि में श्री कनकभवनविहारी ने स्वयं उनको भोजन लाके दिया और कहा–"आप अयोध्यावास करें, हम सब प्रकार रक्षा करेंगे।" ऐसा कहकर प्रभु अदृश्य हो गये। वह दोनों स्त्री–पुरुष घर के बड़े आदमी थे। इच्छा न होने पर भी पिता ने विवाह कर दिया। श्रीराम जी का साक्षात्कार करने के लिये तप करने चले तो स्त्री ने कहा–हम भी प्रभु को प्राप्त करने के लिए तप करेंगे। दोनों ही सब त्याग कर चले और अयोध्या में आ के कनकभवन के द्वार पर प्रभु प्राप्ति के लिये हठ करके खड़े हो गये। प्रभु ने उनकी इच्छा पूर्ण कर दी। वह युगल जोड़ी के नाम से प्रख्यात है।

प्रत्यक्ष प्रभु की असीम कृपा

श्री बैजनाथ मोदी (बैजू बाबू) जो टाँडा में कारोबार करते थे। उनके मन में बाल्यकाल में भक्ति थी। वे अयोध्या जानकीघाट के प्रसिद्ध पूज्य पं. श्री रामपदार्थदास जी वेदान्ती जी महाराज के शिष्य हुए। कभी–कभी अयोध्या आते थे। एक बार वह वि.सं. 2001 में आये तो कनकभवनविहारी भगवान के दर्शन किये। प्रभु के दर्शन करते समय सहसा दिव्य अनुपम छटा

ऐसी बरछी सी हृदय में धंस गयी कि अब टांडा जाना कठिन हो गया। मन में यह व्याकुलता छा गई कि अब अयोध्या में वास करें। यहीं पर रहकर शेष आयु प्रभु के दर्शन करते हुए व्यतीत करें। अब रहने के लिए मकान खोजा गया और मकान खरीद भी लिया गया। अपनी पत्नी सहित अयोध्या में रहने लगे। कुछ समय पश्चात् इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। आप कनकभवन में नित्य जाते थे तो यही वासना उठती थी कि कनकभवन में झाड़ू लगाये और प्रभु को छोड़कर कनकभवन के बाहर न जायें। ऐसी प्रार्थना बराबर करने लगे कि अब सरकार अपनी सेवा में रख ले। अधीर होकर कनकभवन के मैनेजर श्री पं. हरप्रसाद जी से कई बार अपनी इच्छा भी प्रकट की पर मैनेजर साहब हाँ–हाँ करते रहे, आज्ञा नहीं दी। तब एक दिन अत्यन्त आर्त हो प्रभु से प्रार्थना की, बस उसी दिन प्रेरणा हुई। मैनेजर साहब ने इनको स्वयं बुलाकर कनकभवन में रहने की आज्ञा दी। आप उसी दिन से रहने लगे और नित्य कनकभवन में झाड़ू लगाने लगे। प्रभु के प्रसाद के सिवा कुछ भी और अन्न नहीं लेते हैं और कनकभवन को छोड़कर कहीं भी नहीं जाते हैं। प्रभु के आगे टकटकी लगाकर दर्शन करते रहते हैं। आपके पुत्र व पुत्रवधु तथा पौत्र आदि भी सब कनकभवनविहारी के भक्त हो गये हैं।

वि.सं. 2016 में श्री रामनवमी को आपको दिव्य अनुभव हुआ जो कि आप बताना नहीं चाहते हैं। आप कहते हैं कि श्रीरानवमी को कोई चाहे तो भगवान साक्षात दर्शन देते हैं।

प्राण–रक्षा

मैनेजर मुक्ताप्रसाद के समय सन् 1941की बात है। पुजारी श्री बल्देव प्रसाद जी बीमार हुए। इतने बीमार हुए की वैद्य डाक्टरों ने जवाब दे दिया कि अब यह नहीं बचेंगे। क्षयरोग था। चला फिरा तो जाता नहीं था। एक दिन रामनवमी को जीवन से निराश होकर खिसकते खिसकते कनकभवन की चौखट तक पहुंचकर रोने लगे कि प्रभो, मुझे मरने की चिन्ता नहीं है, किन्तु आपकी सेवा छूट जायेगी। बस इसीलिए मुझे व्याकुलता है। आपने मेरे कहने पर कैदियों को फाँसी से छुड़ा दिया। सैकड़ों भक्तों की चिट्ठी आती। मैं प्रार्थना करता हूँ तो आप उनका कार्य कर देते है। तो आज मुझ पर भी कृपा कीजिए। रोते–रोते उनको तन्द्रा सी आ गई। देखा कि भगवान कहते हैं, जानकीनवमी तक तुम अच्छे हो जाओगे एक महीना अयोध्या से बाहर कहीं रह जाओ। तुम्हारी आयु तो पूर्ण हो चुकी है, पर हम अपनी सेवा के लिए तुमको लम्बी आयु प्रदान कर रहें हैं। पुजारी जी ने मुक्ताप्रसाद से तथा अपने श्वसुर से कहा कि हमें कहीं बाहर ले चलो। इनके श्वसुर 'दतिया' ले गये। वहाँ यह अच्छे होकर ठीक जानकीनवमी को फिर अयोध्या लौट आये। तब से वह आनन्द में हैं।

दुल्हा रूप में दर्शन

पटना के श्री मुनीश्वर बाबू की धर्मपत्नी जो जानकीघाट पर ठहरी हुई थीं, वि.सं. 2014 में श्री रामविवाहोत्सव पर अवध आईं थीं। वे तन्मय होकर अखण्ड भजन करती रहती हैं। एक दिन उन्होंने देखा कि हनुमान बाग के पास सन्ध्या समय दुल्हावेष में श्री रामजी घोड़े पर सवार मंद–मंद मुसकुराते चले आ रहे हैं। घोड़े की लगाम एक छोटे से लड़के ने पकड़ रखी थीं। वह बड़ी देर तक दर्शन करतीं रहीं, उनको ऐसा लगा जैसे कनकभवनविहारी ही साक्षात् हों।

पीछे से मुनीश्वर बाबू आये, उन्होंने भी थोड़ी झलक देखी। उसी सड़क पर थोड़ा सा ही आगे चलकर प्रभु अदृश्य हो गये। चारों ओर देखा–दौड़े–पर कुछ पता न चला, उनका कनकभवन आने का नित्य नियम था, दोनों ही जब कनकभवन पहुंचे तो देखाकि जो पोशाक घोड़े पर सावर प्रभु की देखी थी वही रंग वही पोशाक कनकभवनविहारी पहिने हुए थे।

भक्त की नौकरी की मनोकामना पूर्ण

श्री ब्रह्मनन्दन जी राय, उपायुक्त राजस्व परिषद लखनऊ, जब सन् 1963 में विद्या अध्ययन कर रहे थे। यह महानुभाव यहाँ कनकभवन में अपने घर से विद्या अध्ययन छोड़ने व साधू वृत्ति में रहने के लिए आये तो इन्होंने उस समय भोजन बिल्कुल त्याग दिया था, केवल जल ग्रहण करते थे। उस समय जब मन्दिर के पुजारी जी को यह समाचार मालूम हुआ तो इनको बराबर घर वापिस जाने के लिए कहते रहे व भगवान का प्रसाद पाने के लिये कहते रहे पर इन्होंने एक नहीं मानी और इसी प्रकार यह 18 दिन बगैर भोजन के बने रहे अठारवें दिन जब भगवान का दोपहर का भोग लग कर मन्दिर बन्द हो गया तब मैनेजर इनके पास गये और इनको फिर समझाया तो इन्होंने कहा कि हाँ आज मुझे रात को ऐसा सुनने में आया है कि कोई कहता है कि तुम वापिस घर जाओ इसलिए अब मैं अवश्य प्रसाद पाऊँगा व घर जाऊँगा। वे भंडार में गये और प्रसाद पवाया। उसी दिन वह वापिस घर चले गये और पढ़ने लगे। इसके बाद वह उपायुक्त राजस्व परिषद लखनऊ में नियुक्त हुए। यह महानुभाव उस समय के बाद तारीख 25–04–76 को कनकभवन आये और दर्शन किया।

भक्त को टी.बी. की बीमारी से मुक्ति

रामा भाई पटेल नि. बीकानेर गुजरात ने कनकभवन में आकर बताया कि मैं टी.बी. रोग से पीड़ित हो गया था और बहुत इलाज कराने से अच्छा नहीं हुआ तो मैंने श्रीकनकभवनविहारी जी से मिन्नत की थी कि मैं ठीक हो जाऊँगा तो कनकभवन में आ करके आपको नवान्ह पारायण सुनाऊँगा। वह नवान्ह पारायण करके प्रसन्नचित्त से वापिस चले गया।

राधा लाल आयल मिल पटना सिटी बिहार वाले सन् 1963 में आकर के श्री कनकभवन विहारी जी से संतान होने के विषय में प्रार्थना कर गया था और वह ता. 16–05–73 को यहाँ आया और उसने भगवान का पूजन करवा कर भोग लगवाया और यह समाचार मैनेजर को सुनाया।

भक्त को परीक्षा में सफलता

श्री हरि कृष्ण अग्रवाल के जीवन में एक दिन सौभाग्य का उदय हुआ। घटना मई मास 1967 (वि.सं. 2022) की है, जब वे अपनी धर्मपत्नी, पुत्र एवं पुत्र–वधू के सहित अयोध्या की पावन नगरी में 'कनकभवन' के पुण्य तीर्थ पर मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी एवं जगत जननी सीता जी के दर्शनार्थ उपस्थित हुए थे। भक्ति भावना से भरकर उन्होंने 'जुगलसरकार' के श्री चरणों में, अपने पुत्र की आई.ए.एस. में परीक्षा की सफलता की कामना की। 'युगल मूर्ति' के मनभावन मुख पर एक अलौकिक आभा प्रतिभासित हुई, उस रूप माधुरी को देखकर उनका ह्रदय भावविभोर हो गया। पूजा, अर्चना समाप्त हुई और उसी समय एक चमत्कारिक घटना

हुई। उसी स्थल पर उन्हें एक शीघ्रगामी तार मिला जिसमें उनके पुत्र की केन्द्रीय सेवा प्रथम श्रेणी में चुने जाने की शुभ सूचना थी। उनका मस्तक पुनः 'जुगल सरकार' के समक्ष सम्पूर्ण मन की आस्था एवं श्रद्धा से नत हो गया, जिसकी महानअनुकम्पा से उन्हें इस सौभाग्य की प्राप्ति हुई थी। करुणा विगलित नेत्रों में प्रेमाश्रु झलकने लगे। उन्होंने उस वरदान दात्री मूर्ति को शत् शत् नमस्कार किया और ईश्वर से अपने परिवार पर अपने वरद हस्त की छाया बनाये रखने की प्रार्थना की।

(ग) अन्य अद्भुत चमत्कार-

मंदिर के चोरी गए कलश बरामद

कनकभवन मंदिर के शिखरों पर करीब 125 वर्ष पुराने लगे सोने के कलश 23/24 दिसम्बर 1993 की रात में चोरी हो गये थे। इसकी पूरी रिपोर्ट लखनऊ के दैनिक जागरण अखबार दि. 26/12/93 में प्रकाशित हुई थी। इस चोरी में कुछ गलत विचारों के कर्मचारियों का हाथ था। साजिश करके कतिपय निर्दोष कर्मचारियों को फंसा कर पुलिस से पिटवाकर मंदिर से निकालने की योजना थी। योजना सफल होती तो धीरे-धीरे मन्दिर की सारी सम्पत्ति चोरी हो जानी थी।

कलश फैजाबाद रेलवे स्टेशन पर पकड़े गये। भगवान की ऐसी कृपा हुई की चोर बोरे में कलशों को भरकर सावरमती ट्रेन में बैठने गया था, किन्तु ट्रेन छूट चुकी थी। दूसरी ट्रेन का इन्तजार प्लेटफार्म पर बैठकर कर रहा था कि इतने में ही उधर से रेलवे पुलिस का एक दल गुजरा, जिसने अकस्मात ही डन्डे से बोरे में ठोका तो टन्न से आवाज हुई। पूछताछ पर भेद खुल गया। ईधर पुलिस चौकी से मन्दिर के सिपाही प्रह्लाद को पूछताछ के लिए बुलाया गया। दरोगा जी उसको जायजा कर मारने वाले ही थे कि वायरलेस से सूचना मिली कि कलश मिल गए हैं। दरोगा जी भौंचक्के रह गये, उनके मुंह से निकला-भइया मैं तुम निर्दोस को मार बैठता, भगवान ने बचा लिया। उनकी महिमा अपार है। वे निर्दोस की रक्षा करते हैं। इसके बाद सब बातों का पर्दाफाश हुआ, वे दुष्ट कर्मचारी (जिनमें एक पुजारी भी था) मंदिर की सेवा से हटा दिये गये। चोर पुजारी के ही गांव का था और इसी कार्य के लिए लाया गया था।

इस प्रकार कनकविहारी जी ने अपने निर्दोष कर्मचारियों की रक्षा करके इसी बहाने दुष्ट कर्मचारियों को हटाया।

भक्त घोड़ी

श्यामा नाम की एक भक्त घोड़ी थी जो 'कनकभवन' की निजी घोड़ा गाड़ी में जोती जाती थी। वह संतों को देखकर स्वाभाविक नत हो जाती थी। सब लोग उसकी सुधाई पर दुलार किया करते थे। जब वह वृद्धावस्था को प्राप्त हुई तो प्रबन्धकर्ताओं ने उसे टीकमगढ़ भेजने तथा वहाँ से नया घोड़ा मंगाने का निश्चय किया। लिखा-पढ़ी करके सब बात पक्की हो गयी। रेलवे विभाग के अधिकारियों ने 17अक्टूबर सन् 1917 को कैटलवान डब्बा अलग रिजर्व करके देना मंजूर किया। परन्तु न जाने कैसे घोड़ी को यह बात ज्ञात हो गयी। उसने 3दिन पहले से ही

दाना पानी चारा खाना बन्द कर दिया और बराबर उसकी आँखों से आँसू बहते रहते। उसकी इस दीन दशा पर सबको दया आती थी। परन्तु, इस बात पर ध्यान करके भी भेजना स्थगित नहीं किया गया। रेल का डिब्बा स्टेशन पर आ गया। महसूल उसका सब पहिले ही दे दिया गया था।

सन्ध्या समय चार बजे कई सिपाहियों द्वारा उसे बांध कर स्टेशन ले जाया गया। ऐसा पता लगता था कि वह घोड़ी रो रही है। टीकमगढ़ नहीं जाना चाहती। उसे अयोध्या में ही शरीर त्यागने की इच्छा थी। वह बड़े जोर से डकराने लगी। फिर जब उसे जबरदस्ती डब्बे में चढ़ा दिया गया तो वह स्वांस रोक कर मुरदे की भांति लेट गई। जमादार जब स्टेशन से लौटकर मन्दिर में आये और घोड़ी की विरह--दशा सुनाई तो सब लोग उसके लिये चिन्तित हुए। मैनेजर भी सोचने लगे कि--ऐसी दशा में व्यर्थ ही भेजा वह रास्ते में ही मर जायगी। उसका अवधवास छुड़ाने का पाप हमें लगा। पर अब हो ही क्या सकता है वह तो गई। रात्रि में वह डिब्बा पैसेंजर ट्रेन में जोड़ा जाने वाला था। लेकिन आश्चर्यजनक घटना हो गई। रेलवे कर्मचारी उस डिब्बे को ट्रेन से जोड़ना ही भूल गये। प्रातःकाल स्टेशन मास्टर उस डब्बे को खड़ा देख बहुत घबड़ाया । कर्मचारियों को फटकारने लगा। उसकी नौकरी में बट्टा लगने वाला था। इतनी बड़ी भूल, अब क्या होगा। डब्बे में घोड़ी को देखा तो वह मरी पड़ी है। स्टेशन मास्टर ने मैनेजर को पत्र लिखा कि--"यह तो घोड़ी मर गई है और रात्रि में भूल से डिब्बा नहीं जा सका। आप इस मुर्दे को वापिस लेना चाहे तो आ सकते हैं।" पत्र पढ़कर मैनेजर बहुत प्रसन्न हुये। सोचा कि--चलो उसको वापस मंगाकर यहां क्रियाकर्म कर दें। उसकी अवध में ही मिट्टी रहे।" जब स्टेशन पर गये ओर उसे डिब्बे से निकलावकर बाहर डलवाया तब तक तो वह मरी ही प्रतीत होती थी। इतने में गुरुदीन जमादार को न जाने क्या सूझी। उसने घोड़ी के कान में पास जाकर कहा-- "श्यामा जी उठो, चलो। कनकभवन में लौट चले, अब टीकमगढ़ नहीं जाना होगा। बस इतना सुनते ही वह घोड़ी उठ खड़ी हुई, बिना किसी की सहायता से भागती हुई चल पड़ी और आप ही कनकभवन में आकर खड़ी हो गई।

उसके पश्चात् वह 5 वर्ष तक और आनन्दपूर्वक जीवित रही। उसकी कनक भवन के प्रति भक्ति देखकर सबको आश्चर्य होता था। जहाँ पशुओं की ऐसी भक्ति है वहाँ मनुष्यों का तो कहना ही क्या। 'जासु वियोग विकल पशु ऐसे' वैसे ही त्रेता की सी बात कलियुग में भी प्रत्यक्ष देखी गयी। उसके साकेतवास के पश्चात लोग यह दोहा गाया करते थे कि--

"श्यामा गई साकेत को, लोगन यहै सिखाय।
यहि तन कर फल हरिभजन, वृथा न देहु गंवाय।।
पशुतन में मैं अस कियो, राखी अपनी टेक।
नरतन पाय न चेतिहौ, पछितैहौं जन्म अनेक।।"

इस प्रत्यक्ष घटना से यह भी समझ में आता है कि जो पशु--पक्षी आदि की कथाएं कही गई हैं वे निरी कहानियां ही नहीं हैं, वे वास्तविक चरित्र हैं। इस नास्तिकता के युग में भी जबकि मनुष्य राग--द्वेष, काम--क्रोध आदि से मलिन तमोमय हो रहा है--ऐसे अलौकिक भक्तिरसपूर्ण दिव्य भावों के समझने की योग्यता ही लोगों में नहीं रही है। परन्तु, हैं अब भी कुछ दिव्य आत्मायें

जो सात्विक हृदय हैं, निर्मल–निष्काम भाव वाले हैं और प्रभु–प्रेम के पात्र हैं, उनको ही इन भक्त और भगवान की सरस कथाओं का आनन्द प्राप्त होता है। वे मनुष्य नहीं मनुष्यों में देवता हैं। देवता ही नहीं देवताओं के भी पूजनीय हैं। उन्हीं के लिये इस चरित्ररूपी अमृत को परोसा गया है। इस अमृत का पान करके वे अमर हो सकते हैं जो इस रस को पान करते समय हृदय को छिद्रों से रहित कर लेंगे।

बिजली गिरने पर भी हानि नहीं

जब कनकभवन का जीर्णोद्धार हुआ, उसके कुछ वर्ष बाद 'कनकभवन' पर वर्षाऋतु में बड़ी जोर की बिजली गिरी। कनकभवन के ऊपर बिजली गिरते ही सबको बड़ा भय हुआ पर आश्चर्य की बात है कि बिजली ऊपर की मंजिल से टकराकर नीचे आंगन में जा गिरी। जैसे किसी ने उसे उछाल कर फेंक दिया हो। यह घटना गुरदीन जमादार जो बहुत पुराना था उसने सुनाई थी। दूसरी बार ऐसी घटना वि.सं. 2015 में भी हुई।

श्री स्वामिनी जी की करूणा

एक बार जब कि पुजारी श्री गणपति प्रसाद जी चतुर्वेदी पूजा करते थे तो सहसा श्री कनकभवनविहारिणी श्री किशोरी जी की मूर्ति के नेत्र लाल हो गये और आँखों में अश्रु भरे हुए दिखाई दिये। यह दृश्य देखकर सब भक्तों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने में एक वैद्य आये। वे भी परम भक्त थे। वे बोले–श्री किशोरी जी की आँख आ गई है। इनकी औषधि होनी चाहिए। उन्होंने भोगथाल में मिर्च और नमक आदि डालना बन्द करा दिया, गोला गरी और मिश्री दिन में कई बार भोग लगने लगी। इतने में एक पंडित ज्योतिषी आये। उन्होंने मैनेजर माधवप्रसाद जी से कहकर अरिष्ट निवारक अनुष्ठान बैठा दिया। कई पंडित ग्रहशान्ति के लिए जप, पाठ आदि करने लगे। दो दिन तक बराबर नेत्र लाल रहे और अश्रुधारा चलती रही। रात्रि में पुजारी जी को स्वप्न में श्री किशोरी जी ने कहा कि–हमारी एक भक्त स्त्री बहुत गरीबिनी है। वह काठियावाड़ में रहती है। वह हमारे दर्शन को अवध में एक बार आयी थी। वह हमारा ध्यान कर रही है। वह इस समय बहुत बीमार है। हमारे विरह में व्याकुल है। उसकी वेदना मुझसे सहन नहीं हो रही है वहाँ पर वह मेरे लिये रो रही है और मैं उसके लिए रो रही हूं। उसकी यह दशा है कि कोई उसको पानी भी देने वाला नहीं है उस गरीबिनी का शरीर कल दिन में दस बजे छूट जायेगा। तब मेरी भी अश्रुधारा बन्द होगी। वह मेरी सखी बनकर मेरे पास आ जायेगी।

ऐसा ही हुआ भी। प्रातःकाल दस बजे अपने आप आँखों से अश्रु बन्द हो गये और जो आँखों लाल हो रही थीं वे आंखें स्वच्छ श्वेत हो गयीं। इस घटना से यह पता चलता है कि जो जिस प्रकार उनसे प्रेम करता है वैसा ही प्रेम उधर से भी होता है। ऐसे गरीब कंगालों का भी वहां पर इतना आदर है। भगवान से भी अधिक किशोरी जी की जो करूणा प्रसिद्ध है, वह बात प्रत्यक्ष वहां देखी गयी। यह घटना वयोवृद्ध पं० श्री हनुमानदत्त जी व्यास जन्मभूमि वाले ने प्रत्यक्ष देखी थी।

भगवान का रंग

वि.सं. 2001की बात है। प्रथम लेखक श्री जयरामदेव जी के साथ एक भक्त आये थे। वह जिला सागर के रहने वाले थे। उन्होंने उनके साथ 'कनकभवन' दर्शन करने पर कहा कि–"यहाँ की मूर्ति तो श्वेत है भगवान का रंग तो शास्त्रों में श्यामल वर्ण कहा गया।" श्री जयरामदेव जी ने उत्तर दिया–यह मूर्ति नहीं साक्षात् पूर्णब्रह्म प्रभु ही हैं। जब आपकी ह्रदय की लगन बढ़ेगी तो जैसा रूप उनका है, वैसा प्रकट होगा। आप भाव से उनका दर्शन कीजिये, अभाव लाना अपराध है। ऐसे वार्तालाप करके लौट आये।

दूसरे दिन फिर वह 'कनकभवन' गये तो भगवान उनको नीलें रंग के दिखाई पड़े। वह बड़ी देर तक आश्चर्य से घंटों बैठे देखते रहे। फिर मंदिर की परिक्रमा करने चले और कहने लगे–"आज तो भगवान नीले रंग हैं। मालूम होता है कि पुजारी ने नीला रंग चेहरे पर लगा दिया है।" लेखक ने कहा–"मुझे तो भगवान जैसे राज थे, वैसे ही दीखे हैं। कोई फर्क नहीं। नीला रंग पुजारी अगर भूल से भी इनके लगा दे तो वह मंदिर से निकाल दिया जायेगा।

इतनी बात होते–होते वह फिर 'कनकभवनविहारी' से सामने परिक्रमा करके जब पहुंचे तो क्या देखते हैं कि प्रभु का वही रंग था, नीला रंग अदृश्य हो गया था।

इस बात पर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भी एम.ए. पास थे। उनके मन पर इस घटना का इतना असर हुआ कि वह अयोध्या कनकभवन के पूर्ण अनुरागी बन गये।

"छिन–छिन में नव नव सखी, बदलत अंगन रंग।
जैसे दरपन झाड़ में, परि रवि किरण तरंग।।
रामरूप नख शिख सुभग, कान्ति ललित लहराय।
अंग श्याम के गौर हैं, कछु नहिं परत लखाय।।"

कुंए में गिरी कन्या की रक्षा

वि. सं. 2009 की एक और भी विचित्र घटना है। राजस्थान के कुछ यात्री अयोध्या आये हुए थे। उनके साथ की एक 10 वर्ष की बालिका कनकभवन के आंगन के कोने पर बने हुए विशाल कुयें पर पानी पीने गयी। उसमें उन दिनों हाथ से खींचने का पम्प लगा हुआ था। वह बालिका कुयें में झांक कर कुयें की गहराई देखने लगी। सहसा वह कुयें में गिर गई। वह कुआं बहुत गहरा हैं यात्रियों की भीड़ लग गई। सब चिल्लाने लगे कि लड़की कुयें में डूब गई। लेकिन, जब कुयें में देखा गया तो लड़की कुयें में खड़ी थी, पानी कुयें का सूख गया। यात्रियों ने कनकभवन के कर्मचारियीं को खबर दी। कर्मचारियों ने एक कुर्सी बांधकर कुयें में लटकाई, साथ ही बिजली का बल्ब भी नीचे लटकाया गया। वह लड़की उस कुर्सी पर बैठकर आराम से ऊपर आ गयी। उस उड़की के कपड़े पानी से बिल्कुल भीगे नहीं थे आश्चर्य की बात यह हुई कि लड़की के गिरने से पहले उस कुयें में लगभग 15 फुट गहरा पानी भरा था। उसके गिरते ही पानी सूख गया था और उसके निकलते ही फिर ज्यों का त्यों तुरन्त भर गया। यह कनकभवन की प्रत्यक्ष चमत्कार सबने देखा। उस बालिका ने बताया कि जब मैं गिरी तो मुझे एक सुन्दर श्यामरंग के लड़के ने बीच ही में रोक लिया। वह मुझे गोद में लिये रहा। जब मैं

कुर्सी पर बैठ गई तो गायब हो गया।

कमल के फूल

अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि सन् 1958 में कनकभवन के मैनेजर श्री पं. हरप्रसाद जी श्री जानकीनवमी के उत्सव की तैयारी में लगे हुए थे। प्रभु की सेवा के प्रबन्ध में संलग्न थे। उस दिन उनके मन में आया कि वैशाख का महीना है। इस गर्मी में यदि कहीं कमल के फूल मिल जाते तो श्री युगल सरकार का शृंगार कमलों से कराते तो बड़ा आनन्द होता। इस भाव से आपने सर्वत्र खोज की पर कमल कहीं नहीं मिले। अन्त में सिपाहियों को कमल खोजने भेजा पर वह भी सब हताश होके लौट आये। दिन में 11 बजे उसी श्री जानकीनवमी के दिन विचित्र घटना घटी। एक सुन्दर बालक कमल के फूल लेकर आ गया। वह बालक किशोर अवस्था का था—वह कमल के फूल टोकरी में लाया था। वह बालक सदर फाटक से आता हुआ दिखाई दिया था। उसने कमल के फूलों की टोकरी आते ही मैंनेजर को दी और कहा—शृंगार करा दीजिये। मैनेजर साहब उन कमल के फूलों को देखकर अत्यन्त हर्षित हुए। उपकी मनोकामना पूर्ण हुई। उन्होंने वह टोकरी लेकर पुजारी को दे दी और पुजारी से कहा—इस बालक को भीतर से लाकर प्रसाद दीजिये। यह न जाने कौन भक्त है जो बड़े मौके पर फूल लाया है।

इतने में मैनेजर साहब ने देखा कि वह बालक नहीं है। इधर—उधर खोजा पर फिर पता ही न चला। वह क्षणमात्र में अदृश्य हो गया। यह घटना ऐसी हुई कि जिससे मैनेजर साहब को आस्तिक भावों पर पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो गया। क्योंकि जब स्वयं खावे तब भूख जाती है—

"असन अघाय खाय तृप्त होय भूखो नर,
शान्ति की सुमूरि भूरि तब ही चखा करै।
बसन विहीन वस्त्र पाय के सिहावैं जब,
"छत्रसाल" तबै शीत मीत सों लखा करै।
बाल ब्रह्मचारी तू ही• धर्मधुरधारी जो पै,
पापी ये म्लेच्छ फारि क्यों न दो फका करै।
लोग तो दिखावै कहैं सूर्य को प्रकाश भया,
सूरति वै जानैं जिन्हैं आंखिन दिखा परै।

दिव्य दृष्टि वाल साईस

श्री महाराणी जी के द्वारा कनकभवन का जीर्णोद्धार होने से पहिले की बात है। परम प्रसिद्ध एक महान भक्त श्री श्यामदास जी श्री रामगुलेला स्थान पर रहते थे। उनकी विचित्र भक्ति थी। वे कनकभवन सरकार के अनन्य उपासक थे। उन्होंने प्रभु के घोड़े को चलाने का कार्य सेवा में लिया था। वे अपने को प्रभु का साईस मानते थे उनका नित्य प्रातःकाल व सायंकाल दोनों समय आने और प्रभु को ले जाने का नियम था। वे सवेरे ही चाबुक लेकर आते और कनकभवन के फाटक पर खड़े हो जाते। घोड़ा दिखाई नहीं देता था। पर वे कहते—खड़े

रहो, खड़े रहो सरकार आ रहे हैं। घोड़े को पुचकारते रहते। प्रभु किसी को दीखते नहीं, पर वे कहते बैठिये। अब बैठ गये, बच चलिये सरयू चलिये। ऐसे कहते चलते जैसे घोड़े को पकड़ कर चलते हैं हटो हटो, बचो, बाजार में होते हुये सरजू तक जाते। वहां कहते, सरकार घोड़े से उतरिये। फिर वहां खड़े रहते। स्नान कराके फिर वैसे ही हटो बचो कहते चाबुक फिराते कनकभवन के फाटक तक आते और प्रभु को उतार कर घर चले जाते। फिर सन्ध्या के पहिले ही आते और बागों मेंसैर कराके प्रभु को इसी तरह पहुंचा जाते।

उन भक्त जी को लोग खूब हँसी उड़ाया करते थे। लोग कहते कि न तो कहीं घोड़ा है, न भगवान हैं। यह भक्ति का ढोंग है। परन्तु वे प्रतिदिन नियम से यह कार्य करते थे। एक बार रीवा नरेश राजा श्री रघुराज सिंह जी अयोध्या आये। उनके साथ पांच हाथी थे। हाथियों के आगे और पीछे 25 फौजी घुड़सवार थे, 100 सिपाही पैदल थे। राजासाहब की सवारी धूमधाम से आ रही थी। इधर से हमारे भक्त जी प्रभु को सरजू स्नान कराके चाबुक हाथ में लिये हटो–बचो, प्रभु आ रहे हैं कहते हुए चले आ रहे थे। राजा की सवारी की भीड़ सामने आती देखकर बोले–हटा जाओ, हमारे प्रभु आ रहे हैं।

आगे–आगे राजा के सैनिकों ने–जो पैदल थे भक्त की बात मान ली। सड़क के दूसरे किनारे की ओर हट गये परन्तु फौजी घुड़सवारों ने बात नहीं मानी। वे आगे बढ़ने लगे। तब भक्त जी ने कहा, नहीं मानोगे तो हमारे सरकार का घोड़ा बिगड़ जायेगा। तुम लोग पछताओगे। पर भक्त की हँसी उड़ाते हुए राजा के सवार बढ़े ही चले गये। ज्यों ही भक्त जी के पास पहुंचे त्यों ही वहाँ पर आश्चर्यजनक घटना घटी। वे घुड़सवार क्या देखते हैं कि सामने से घोड़ों पर सवार दिव्य फौज आ रही हैं। घोड़े और हाथी सब उल्टे लौटकर भागे। उनको बहुत रोका गया गया पर न घोड़े रुके, न हाथी। भयभीत होकर घोड़े हाथी ऐसा भागे कि राजा रघुराजसिंह को तथा सिपाहियों को बड़ी घबराहट हुई जनता यह कौतुक देखकर आश्चर्य में डूब गयी। सब लोग कहने लगे–भक्त जी का ढोंग नहीं था। वास्तव में प्रभु आते हैं ओर उनका घोड़ा आता है। भक्त जी की दिव्य दृष्टि है। वे देखते हैं। यदि हम लोग नहीं देख पाते तो इसमें हमारा ही दोष है। चाहे सरदी हो गरमी हो वे भक्तजी बारहों महीने समय पर यह सेवा करने आत थे। संसार उनको नहीं पहचान सका था। वे संसार की ओर दृष्टि न करके अपने प्रभु की नौकरी करते थे। आजकल के लोगों में वे नहीं थे। वे सतयुगी भक्त मालूम होते थे।

जूती–सेवी भक्त

ऐसे ही भक्त श्री वृन्दावनविहारी ऋणमोचनघाट पर रहते थे। उनका नित्य नियम था। प्रभु को चरणपादुका पहनाने की सेवा वे अपनी रुचि से करने आते थे। रेशम के एक रूमाल में वे भावनामयी चरणपादुका लाते और आइये सरकार पहिनिये–कहते। हाँ प्रभु आओ पहनो। बड़े प्रेम से पहनाते फिर बैठे रहते। जब प्रभु भ्रमण करके आते तब चरणपादुका उसी रूमाल से लेकर अपने घर आते। केवल रूमाल दीखता था और लोग न प्रभु को देखते थे न पादुकाओं को देखते थे। उनकी भावविभोर दशा देखने योग्य थी–गद्‌गद् कण्ठ और प्रेमाश्रु। एक बार वे रूमाल फैलाये बैठे थे कि सरकार आयेंगे तो उनकी पादुकायें लेके घर जायेंगे। उस दिन दिव्य

मखमल के कामदार स्वर्णतारों के रचित जूतियाँ पभु सचमुच ही उतार गये। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे रूमाल में आज सचमुच जूती लेके गये। प्रातःकाल वे फिर लाये। प्रभु उन जूतियों को पहिनकर चले गये, फिर वे जूती नहीं आई, फिर वे वही केवल भावनामयी जूतियाँ लाते, ले जाते रहे, एक दिन उनको देवयोग से सेवा में बिलम्ब हो गया। वे नहीं आ सके, बड़ी वेदना हुई। इतना दुःख हुआ कि शरीर छूट गया।

चिड़िया को जीवनदान

गर्मी के दिनों में सम्वत् 2008 की बात है। पयागपुर के राजा साहब बैठे हुए थे। और भी दर्शनार्थी बैठे थे। सहसा एक छोटी चिड़िया उड़ती हुई मन्दिर में आई। बिजल का पंखा ऊपर चल रहा था। वह चिड़िया उड़ते समय पंखे में फँसकर टकरा गई। उस बड़े पंखे से जोर से टकराने के कारण वह मंदिर में नीचे फर्श पर गिरी और मर गई। कनकभवनविहारी प्रभु के सामने वह बहुत देर तक मरी पड़ी रही। इतने में पुजारी श्री मूलचन्द्र जी सोच रहे थे कि अब इसको उठाना पड़ेगा नहाना पड़ेगा। इतने में एक महात्मा उस चिड़िया को उठा कर बाहर फेंकने लगे। पुजारी जी ने कहा—इसके मुख में भगवान का चरणामृत डाल दो। यह मर तो गई है इसकी मुक्ति हो जायेगी। वह महात्मा चिड़िया को हाथ में लिये हुये कहने लगे—अब मुर्दे पर चरणामृत डालने से क्या लाभ। राजा साहब प्रयागपुर ने कहा—चरणामृत डालने से हानि भी तो कुछ नहीं है। सबके कहने से उसके मुख में प्रभु का चरणामृत डाला गया डालते ही वह चिड़िया जीवित हो गई और तत्काल फुर्र से उड़ गई और यह घटना देखकर राजासाहब को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। यह घटना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसी कई बातें प्रत्यक्ष हो चुका है। कनकभवन के कुयें में गिरे हुए का जीवित ही रहना, चोटन लगना। वह प्रत्यक्ष प्रभाव तो अनेकों बार यहाँ देखने में आया है इसलिए यह सत्य घटनायें हैं। प्रभु श्रद्धा कराने के लिये कोई बात बनाकर नहीं लिखी जा रही है। जैसा हुआ है वैसा चरित्र लिखा गया है। एक घटना मैंने स्वयं देखी थी—मोतिहारी के वकील श्री मोहन प्रसाद जी की मामी कनकभवन में दर्शन करने आई थीं। उन्होंने भगवान् के दर्शन के लिये कितने उपवास किये हैं। वह बैठी थीं। उनकी दृष्टि प्रभु से मिल रही थी। सहसा उनके अंचल में कुछ पान, मेवा आदि प्रकट हो गई। उनको ऐसा लगा कि स्वयं प्रभु मन्दिर के अन्दर से आकर इनको दे रहे हैं। मैं (जयरामदेव) भी वहाँ पर बैठा था—किसी ने दिया नहीं था। वहाँ कोई आया गया नहीं था। वह प्रसाद भी मैने देखा और खाया था बड़ा विचित्र स्वाद था। विलक्षण वस्तुयें थीं। इसलिए ऐसी घटनायें यहाँ होती ही रहती हैं। जो अधिकारी हैं, प्रबल प्रेमी भक्त हैं उन पर ऐसी कृपाएं होती हैं।

अलौकिक सेवक—मुसलमान सिपाही पर कृपा

वि.सं. 1976 में बादल खाँ नामक सिपाही ओरछा राज्य की तरफ से कनकभवन में आया। वह सिपाही बड़ा भक्त था वह हवलदार हो गया था। उसके हृदय में अयोध्या के प्रभु श्रीराम जी की भक्ति थी। वह स्वयं कोशिश करके अयोध्या में आया कि भगवान् के द्वार पर भजन

करने को मिलेगा। वह मंदिर का पहरा देते हुए भजन गाता रहता था। कुछ ही दिन काम करने के पश्चात वह बीमार हो गया।

उसकी अत्यन्त असाध्य दशा देखकर मैनेजर श्री माधवप्रसाद जी ने उसकी सेवा के लिए मन्दिर के सब आदमियों से कहा–पर कोई भी तैयार नहीं हुआ क्योंकि मुसलमान था–पर मैनेजर साहब के हृदय में बड़ा दुःख था कि यह भक्त आदमी है। बीमारी में इसकी सेवा कौन करे–इसी चिन्ता में वे बैठे थे कि उसी समय एक विचित्र वेषधारी आदमी आया। उसने कहा मुझे नौकरी की आवश्यकता है।" मैनेजर साहब ने उससे कहा–"हमारे यहाँ एक मुसलमान बीमार है। उसकी सेवा कर सकोगे।" उस आदमी ने बड़े प्रेम से मुसलमान की सेवा करना स्वीकार किया। उसने तनख्वाह भी नहीं तय की। उसको स्थाई रूप से नौकर रख लिया गया। 15 दिनों तक लगातार उस भयंकर बीमारी में रात–दिन वह आदमी सेवा करता रहा। बादल खाँ ने मैनेजर साहब से कहा कि वह आदमी रात–दिन हमारी सब सेवा करता रहा। गंदे कपड़े धोता हैं। उठाता–बैठाता और रात भर जागता रहता है। ऐसी सेवा तो मेरे घर का भी कोई नहीं करता। मैं जो चीज मन से इच्छा करता हूँ वही चीज यह लाके दे देता है, कभी अलसाता नहीं। 15 दिन की घोर बीमारी के पश्चात् जब बादल खाँ की मृत्यु हो गई तो उसको सरयू जी पहुंचा कर उस आदमी ने कोठरी की गन्दगी सब साफ की और प्रसन्न मन से उत्साहपूर्वक जाने को तैयार हुआ। मैनेजर साहब ने कहा–भोजन तैयार है कहाँ जाते हो? उसने कहा–अभी आते हैं। फिर वह लौटकर नहीं आया। उसका भोजन थाल परोसा ही रहा गया। फिर वह आज तक नहीं दिखाई दिया। कितने आश्चर्य की बात है।

इस घटना से ज्ञात होता है कि मुसलमान भक्त के दुःख को प्रभु सहन नहीं कर सके। उसकी सेवा के लिये कोई अपना पार्षद ही इस वेष में भेजा था। निश्चय ही उस दरबार में दीन–दुखी भक्त की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है।

"जो रहीम दीनहिं लख, दीनबन्धु सम होय।"

दंगे के समय रक्षा

अयोध्या में जब सन् 1934 में हिन्दू–मुस्लिम दंगा हुआ, उस समय मंदिरों के रक्षक बहुत भयभीत हो रहे थे कनकभवन के प्रबन्धक–पुजारी आदि सब घबड़ा रहे थे कि अब न जाने क्या होगा। क्योंकि बाहर से सहस्त्रों यवन आ रहे हैं, ऐसी खबरें आयी। उस दिन कनकभवन में सबने प्रभु से प्रार्थना की। भगवान के आगे ढाल–तलवार रख दी गई कि आप ही इसे संभालिये और हम सब निर्बलों की रक्षा कीजिये। थोड़ी देर में देखा गया कि "वह तलवार आप से आप खड़ी हो गयी।" यह देखकर सबको विश्वास हो गया कि भगवान अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे। यह भगवान ने संकेत किया है कि घबड़ाओं नहीं वैसा ही हुआ भी, सब प्रकार से रक्षा हुई।

यह घटना कनकभवन के उस समय के (पुरोहित) पं. श्री दिनेश जी ने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखी थी। वे उस समय घर छोड़कर दंगे के भय से परिवार सहित कनकभवन में आकर रहे थे।

श्री हेमलता जी का पाणिग्रहण

लगभग 100 वर्ष की बात है। जब यह कनकभवन का नवीन निर्माण नहीं हुआ था। एक राजकुमारी हेमलता आई थीं, वह गुजरात के एक राज्य की कन्या थी। उसके बाल्यकाल में प्रभु उसके बगीचे में रोज जाते थे और उसके साथ खेलते थे। वह कोई पूर्व जन्म की सखी थीं। एक दिन उसने परिचय पूछा कि तुम कौन हो। उसी दिन से प्रभु अदृश्य हो गये। फिर प्रभुने उसको स्वप्न में आज्ञा दी कि 'कनकभवन अयोध्या' से हम तुम्हारे पास आते थे। तुम अयोध्या आओ। उसने अपनी शादी नहीं की। पिता से कहकर प्रेमोन्मत्त दशा में अयोध्या आई। पर कनकभवन में नहीं आई बाहर ठहरी। उसने एक पत्र प्रभु के नाम लिखकर बन्द लिफाफे में कनकभवन में भेजा। पुजारी जी ने वह पत्र भगवान के आगे रख दिया। प्रातःकाल देखा गया कि वह पत्र तो वहाँ नही था। उसके उत्तर में एक पत्र रक्खा था।

वह पत्र हेमलता के पास भेज दिया गया। अगहन सुदि 5 को दिव्य ब्राह्मण उसके पास भेजा गया। वह श्रृंगार करके कनकभवन आई। उस दिन भगवान का दूल्हा वेष था। महात्मा श्रीराम विवाह के गीत गा रहे थे। कनकभवन में वह भगवान के सामने पहुंची, भगवान का रूप देखकर गद्‌गद् होकर तन्मय हो गई, बड़े आनन्द के साथ वो दर्शन करके पता नहीं कहां चली गई, फिर उसका दर्शन किसी को नहीं हुआ। भगवान ने जो पत्र भेजा था, वह तो राजकुमारी हेमलता के पास भेज दिया गया था। वह तो उसके साथ ही आदृश्य हो गया।

झूला दर्शन

श्री पं. रामकिशोर शुक्ल वकील साहब जो श्री जानकीघाट पर रहते थे, उन्होंने कनकभवन में कई बार विचित्र बातें देखी थीं। वे परम विद्वान और अनुभवी थे। उनका कनकभवन–दर्शन का नित्य नियम था। चकोर की भाँति टकटकी लगाकर घंटों बैठकर प्रभु का दर्शन करते थें। एक दिन सायंकाल 4 बजे जब उत्थापन के समय गये तो ये कुछ गुलाब के फूल ले गये। इनका प्रभु से सखाभाव था। इन्होंने प्रेम की तरंग में कनकभवनविहारी के ऊपर फूल फेंककर मारा उस समय कोई भी दर्शनार्थी वहाँ नहीं था। पुजारी जी बाहर बैठकर अपने तिलक कर रहे थे। जब उन्होंने फूल फेंका तो प्रभु ने भी उधर से फूल फेंककर इनके मारा। बस, उसी समय उनको मूर्छा सी आ गयी। ध्यान में देखा कि श्री सीताजी प्रभु से कह रही हैं कि "यह फूल की फेंका–फेंकी ठीक नहीं। दरबार में बैठकर आप सखाओं के साथ ऐसे खेलते हैं। कोई देखेगा तो क्या कहेगा। ऐसा खेल तो ब्रज का है। और इनसे भी कहा कि ऐसा खेल यहाँ बैठकर मत करना।"

बस, उसी दिन से आपने वहाँ बैठना छोड़ दिया। रोज कनकभवन जाते थे पर खड़े–खड़े दर्शन करके लौट पड़ते थे एक दिन आपके मन में बड़ा विरह उत्पन्न हुआ कि हमें सब कुछ मिला पर भगवान का साक्षात् मिलन नहीं हुआ। सन्ध्या का समय था। भादों का महीना था। बादल छाये थे। वह अश्रु बहाते हुए विनय के गीत गुनगुना हुए ज्यों ही कनकभवन के दक्षिण फाटक पर पहुंचे कि उसी समय एक लड़का आया। उसने कहा–चलो फुलवाड़ी में लीला हो

रही है, देख लो। इन्हाने कनकभवन के पीछे की ओर फुलवाड़ी में जाकर देखा तो वहाँ झूला पड़ा हुआ था। श्री सीतारामजी दिव्य रूप से झूल रहे थे। सखियाँ झुला रहीं थी। वह दिव्य छटा देखते ही इनको अद्‌भुत आनन्द प्राप्त हुआ। इन्होंने समझा कि यह रामलीला के स्वरूप झूल रहे हैं। आगे बढ़कर इन्होंने चरणों में प्रणाम किया तो प्रभु ने अपना करकमल इनके मस्तक पर छुआ दिया। उस स्पर्श के दिव्य आनन्द में इतना आह्लाद हुआ कि यह मूर्छित हो गये। जब सावधान हुए तो देखा कि न वहाँ झूला है न प्रभु हैं, न सखियाँ हैं।

इस प्रकार के कई चमत्कार आपको कनकभवन में आये थे। उनके पास जितने भी भक्तजन आते थे सबको वे तत्काल कनकभवन दर्शनार्थ भेजते थे।

कैदियों पर कृपा

वि. सं. 1994 की बात है। उस समय पुराना गुरुदीन जमादार बैठा हुआ था और श्री बल्देव पुजारी जी बैठे चरणामृत बाँट रहे थे प्रातःकाल 10 बजे का समय था। चार कैदियों को लेकर चार सिपाही आते दिखाई दिये। हथकड़ी बेड़ी पहिने चारों कैदी प्रार्थना पुकार करते हुये दुखी हो रहे थे। बल्देव पुजारी जी को वड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक कभी कनकभवन में प्रभु के सामने कैदी नहीं आये। पुजारी जी ने झट से परदा कर दिया। और प्रभु से भीतर जाके प्रार्थना करने लगे कि—"इन कैदियों पर कृपा कीजिये। इनको बन्धन से छुड़ा दीजिये। आपके सामने आने पर तो इनका उद्धार होना ही चाहिये।" पुजारी जी ने स्पष्ट सुना आवाज आई कि—"इनसे कह दो कि यदि अब यह पाप कर्म छोड़ दें तो आज ही इनको हम छुड़ा देंगे।" यह सुनते ही बाहर आकर पुजारी जी ने सिपाहियों से पूछा कि "यह कैदी यहाँ क्यों ले आये।" सिपाहियों ने कहा—"यह कैदी फैजाबाद जिले के हैं, यहाँ 30 कत्ल कर चुके हैं। इनको बड़ी कठिनता से हम गोरखपुर से पकड़कर ला रहे हैं। इन सबको फांसी दी जायेगी।" पुजारी जी ने कहा "कनकभवनविहारी' प्रभु के सामने यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी।" सिपाहियों ने कहा—इन कैदियों ने इच्छा प्रकट की कि सरजू पार कर मार्ग में अयोध्या आये ही हैं तो हमें कनकभवन के दर्शन करा दीजिये। हम लोगों ने सोचा कि हम लोग भी हिन्दू हैं, कभी कनकभवन देखा नहीं, चलो भगवान का दर्शन इसी बहाने हम लोगों को भी हो जायेगा। इसीलिए इधर दर्शन करके अब शीघ्र ही फैजाबाद में इनको लेके जाना है।

तब पुजारी जी ने कैदियों से कहा—"अगर आप लोग आज से पाप न करने की प्रतिज्ञा कर लें तो आप लोग आज ही छूट सकते हैं।" कैदियों ने कहा—"हम लोगों ने बड़े—बड़े पाप किये हैं, बहुत सी हत्यायें की हैं। हमें तो निश्चय ही फाँसी होगी। हम बच नहीं सकते। परन्तु आप कहते हैं तो बताइयें हम क्या प्रतिज्ञा करें।" पुजारी ने कहा—"चोरी, व्याभिचार, हिंसा आदि सभी पापों को आज से मत करना।" कैदियों ने सच्चे मन से संकल्प किया तो प्रभु से प्रार्थना करने लगे। चरणामृत हाथ में लेकर पाप न करने की प्रतिज्ञा की। तब पुजारी जी ने कहा—"जाइये आप लोगों को आज ही भगवान छुड़ा देंगे, ऐसा प्रभु ने हमसे कहा है।" यह सुनकर सिपाही बोले—"यह कभी नहीं हो सकता। इन चारो को फाँसी होगी। अगर यह छूट जायें तो हम आज से यह वर्दी उतार के फक देंगे और साधु बनकर भजन करेंगे।

पुजारी ने कहा–"अच्छी बात है, जाइये देखिये क्या होता है।

सिपाहियों ने कैदियों को ले जाकर फैजाबाद में जब हाकिम के सामने उपस्थित किया तो उसकी बुद्धि बदल गई। वह अफसर कहता है–"इन चारों को अभी छोड़ दो।" न उनको जेल जाना पड़ा, न मुकदमा चला। तुरंत छोड़ दिया गया। उसी समय सिपाही भी वर्दी उतार कर नौकरी छोड़कर चल पड़े। वे चारों सिपाही कनकभवन में आये। पुजारी से भेंट करके अपने –अपने घरों को गये। पीछे साधू हो गये। इस घटना के बाद वह हाकिम भी पछताया कि "मैंने ऐसा हुक्म कैसे दे दिया।" जब सिपाहियों ने कनकभवन की बात सुनाई तो वह भी भगवान का भक्त हो गया।

वियोग लीला का निषेध

एक बार जब श्री माधवप्रसाद जी मैनेजर थे तो कुछ प्रेमी महात्माओं तथा श्रीरामजी ने मिलकर कनकभवन के भीतर श्रीरामजी की गौने की लीला का आयोजन किया। श्री कनकभवनविहारी ने भवन के पुरोहित पं. श्रीकृष्ण जी को स्वप्न में आज्ञा दी कि हमारे यहाँ वियोग की लीला न की जाय। पं. जी ने कहा लेकिन लीला करने वालों ने नहीं माना। लीला प्रारम्भ हुई जगमोहन में, जहाँ पर प्रभु के आगे बैठकर नित्य लोग गान कीर्तन करते हैं। वियोग की लीला थी। गौने की नई लीला रखी गई थी। लीला होने पर वियोग में भरत जी को इतना वियोग उमड़ा कि अश्रुधारा फिर रुकी ही नहीं। उसी विरह दशा में भरत जी के स्वरूप जो बने थे दूसरे दिन शरीर छूट गया। उस दिन से कनकभवन में जगमोहन में लीला कराना बन्द करा दिया गया। हाँ, आंगन में कोई लीला करना चाहे और वियोग की लीला न हो तो भी हो जाती है पर वियोग की लीला का तब से कनकभवन में निषेध कर दिया गया। इस घटना से पता चलता है कि इस दिव्य भूमि में अवश्य ही चमत्कार है, प्रभु साक्षात् निवास करते हैं। जो भरत जी बने थे, उनको विरह दशा में प्रभु का साक्षात् दर्शन भी हुआ था। उसे वे सहन नहीं कर सके। तत्काल उनका साकेतवास हो गया। भरत जी की तो यह दशा हुई और उधर जैसे लीला के प्रारम्भ में रामजी ने आरती उठाई थी कि श्रीरामजी के स्वरूप जो बने थे उनके पलक गिरना बन्द हो गया। उनको साक्षात् भगवान का आवेश हो गया। चौबीस घंटे उनके नेत्र एकटक रहे। फिर ठीक हो गये। बिहार के बड़े–बड़े हजारों भक्त उस उत्सव में आये थे।

***

अध्याय 10

कनक भवन की सखियाँ

कनकभवन की सखियाँ

श्री अयोध्या धाम में भक्तजन जब कनकभवन में दर्शनार्थ आते हैं, तो अधिकांश भक्तजन युगल सरकार के दर्शन कर कृतार्थ हो जाते हैं। किन्तु उन भक्तों में जो अत्यन्त अन्तरंग प्रेमी–सखी–भावना भावित ह्रदय होते हैं वे कनकभवन के ऊपर बने गुप्त शयनकुन्ज का भी दर्शन करने की इच्छा करते हैं परन्तु यह शयनालय सबको नहीं दिखाया जाता। किन्हीं कारणों से अब यह आम जनता के दर्शनों के लिए बन्द कर दिया गया है।

भावना से–इस शयनकुन्ज में नित्य प्रति रात्रि में पुजारी भगवान को शयन कराते हैं। दिव्य वस्त्रालंकारों से सुसज्जित मध्य में सुन्दर शय्या बिछी है। उसमें बीच के कुन्ज में शृंगार सामग्रियाँ रक्खी हैं। उसी कुन्ज में शय्या पर भगवान शयन करते हैं। इस कुन्ज के चारों ओर आठ सखियों के कुंज हैं। श्री चारुशीलाजी, श्री क्षेमाजी, श्री हेमाजी, श्री वरारोहाजी, श्री लक्ष्मण जी, श्री सुलोचना जी, श्री पद्मगंधाजी, श्री सुभगाजी–इन आठ सखियों के प्राचीन चित्र बने हुए हैं। उन चित्रों की शोभा देखने ही योग्य है। अपनी अपनी सेवा में सभी सखियाँ तत्पर दिखाई देती हैं। सभी सखियाँ की भिन्न–भिन्न सेवाएँ हैं। उस सेवा के रहस्य सभी चित्रों के नीचे दोहों में लिखे हुए हैं। वे 8 दोहे इस प्रकार हैं–

श्री चारुशीला जी

प्रथम चारुशीला सुभंग, गान कला सुप्रबीन।
युगल केलि रचना रसिक, रास रहिस रस लीन।।1।।

अर्थात्–श्री चारुशीलजी, युगल सरकार की क्रीड़ा के लिये प्रबन्ध करती हैं। आप गान–कला की आचार्य हैं। अखिल ब्रह्माण्ड के देवी–देवता, जो गानविद्या–प्रिय हैं, गन्धर्व आदि उन सबकी अधिष्ठात्री देवी आप हैं। सृष्टि के वाणी आदि कार्य सब आपके आधीन हैं। आप युगल सरकार के 'विधान–रचना' विभाग की प्रधानमंत्री हैं।

श्री सुभगा जी

सुभगा सुभग शिरोमणि, सेज सुहाई सेव।
सियवल्लभ सुख सुरति, रस, सकल जान सो भेव।।2।।

अर्थात्–ये युगल सरकार के वस्त्रादि की सेवा करती हैं तथ अखिल ब्रह्माण्ड में वस्त्रों का प्रबन्ध, स्वच्छता, आरोग्य आदि आपके आधीन हैं। आजकल के हिसाब से आपको युगल सरकार के आरोग्य–विभाग की प्रधानमंत्रो कह सकते हैं।

श्री वरारोह जी

सखी वरारोह युगल भोजन हरषि जमाय।
प्राण प्राणनी प्राणपति, राखति प्राण लगाय।।3।।

अर्थात्—ये सरकार की भोजनादि का सब प्रबन्ध करती हैं। अखिल ब्रह्माण्ड में आप विश्व भरणपोषण की अधिष्ठात्री हैं। अन्नपूर्णा अष्टसिद्धि नवोनिधि आदि आपके आधीन है। आपको प्रभु का 'गृहसचिव' कहना चाहिये।

श्री पद्मगंधा जी

सखी पद्मगंधा सुभव भूषण सेवित अंग।
सदा विभूषित आप तन, युगल माधुरी रंग।।4।।

अर्थात्—श्री पद्मगंधा जी को भूषण आदि की सेवा मिली है। समस्त संसार का धन, कोष, कुबेर आदि आपके आधीन हैं। आप प्रभु की "अर्थसचिव" हैं।

श्री सुलोचना जी

अलि सुलोचना चितवित, अंजन तिलक संसार।
अंगराय सिय लाल कर, जोवर लखि श्रृंगार।।5।।

अर्थात्—श्री सुलोचना जी प्रभु का अंजन, तिलक सब श्रृंगार सुचारू रूप से सजाती हैं। चंदनादि अंगराग की सेवा करती हैं। इधर वे ही विश्व की श्रृंगार सामग्रियों की प्रबन्धकर्त्री हैं। यह प्रभु की 'प्रबन्धमंत्री' कही जाती हैं।

श्री हेमा जी

हेमा करि बीरी सादा, हंसि दम्पति सुख देत।
सम्पति राग सुराग की, बड़भागिनी उर हेत।।6।।

अर्थात्—कनकभवन में ताम्बूल की सेवा तथा अन्तरंग सेवाएँ भी आपके अधीन हैं। इधर जगत में आप श्रृंगाररस की उपासिकाओं की रक्षा भी करती हैं। महिलाओं के सौभाग्य की चाबी आपके ही आधीन हैं। आप प्रभु की "उत्सव—सचिव" हैं।

श्री क्षेमा जी

क्षेमा समस स्नान सम, वसन विचित्र बनाय।
सुरुचि सुहावनि सुखद ऋतु, पिय प्यारी पहिराय।।7।।

अर्थात्—श्री कनकभवन सरकार को स्नान कराना, ऋतु के अनुसार जल—विहार, उबटन आदि की सेवा करती हैं। इधर ब्रह्माण्ड का समस्त जलतत्व आपके आधीन रहता है। इन्द्र—वरुण आपके आधीन हैं। आप प्रभु की "जल—सचिव" हैं।

श्री लक्ष्मणा जी

लक्ष्मण मन लक्ष गुण पुष्प विभूषण साज।
विहंसि विहंसि पहिरावतीं, सियवल्लभ महाराज।।8।।

अर्थात्–'कनकभवन' में नित्य धाम में यह प्रिया प्रियतम की फूलमाला पुष्पभूषण की सेव करती हैं और जगत् में समस्त वन–उपवन, पशु, पक्षी आपकी रक्षा में रहते हैं। सूर्य चन्द्र आपके आधीन हैं। आप प्रभु की "वनस्पति एवं कला–सचिव" कही गयी हैं।

इस प्रकार इन आठों सखियों की जो महिमा जानकर इनकी उपासना करता है वह समस्त वांछित सिद्धियों को प्राप्त करता है।

श्री सीताजी की सखियां

ऊपर ये आठों सखियां जो कही गई हैं, अखिल ब्रह्माण्डनायक प्रभु श्रीराम जी की सखियाँ कही जाती हैं। इनके अतिरिक्त आठ सखियाँ और हैं जो श्री सीताजी की अष्टसखी कही जाती हैं उनमें श्री चन्द्र कला जी, श्री प्रसादजी, श्री विमलाजी, मदन कला जी, श्री विश्व मोहिनी, श्री उर्मिला, श्री चम्पाकला, श्री रूपकला जी हैं। इन श्री सीताजी की सखियों को अत्यन्त अन्तरंग कहा जाता है। ये श्री किशोरी जी की अंगजा हैं। ये प्रिया प्रियतम की सख्यता में लवलीन रहती हैं। आनन्द–विभोर की लीलाओं में, मान आदि में तथा उत्सवों में निमग्न रहते हुए दम्पति को विविध प्रकार से सुख प्रदान करती हैं।

इन उपरोक्त 16 सखियों का श्री कृपानिवासजी की वाणी में वर्णन है। ऊपर के आठों दोहे उसी वाणी से लिखे गये हैं।

***

अध्याय 11

कनकभवन में गाये जाने वाले पद

कनकभवन में गाये जाने वाले नित्य नियम के पद

(समय–समय पर यह सब पद गाये जाते हैं। नित्य गान कीर्तन आदि के लिये गायक नियुक्त हैं जो प्रातः से शयन पर्यन्त नित्य राग–रागनियों में पद गाते हैं।)

प्रातःकाल जगाने के पद

(1)

श्लोक– बन्दे सखीसमाजं तं प्रेमरज्वा वशीकृतम्।
वबन्ध क्रीडामानो यो श्रीरामं रससागरम्।।

दोहा– जय जय जय रस–रंगमय, सकल सखी सुखखानि।
वंदौ सबके पदकमल, करहु कृपा जन जानि।।

सुन्दर शयन निकुंज में, सेज लसत सुकुंमार।
बीती रजनी रंग में, सोये सुख के भार।।

कनकभवन मणिमय छटा, शयनकुंज के द्वार।
सखी जगावैं मंद स्वर, करि वीणा झनकार।।

(2)

युगल वर जागिये बलि जाऊँ।
चंद मंद दुति दीपक छवि बिन, विकसित कमल लखाऊँ।।
रैनि गई अब जागो प्यारे, दर्शन करि सुख पाऊँ।
उडुगण गये गाय निशि गुणगान, मैं अब प्रभु गुण गाऊँ।।
पंछी कलरव करत मनोहर, कोकिल तान सुनाऊँ।
"रामबल्लभाशरण" प्रेमनिधि, प्रेम सुमन बरषाऊँ।।

(3)

जागो जागो जागो श्याम जानकीविहारी।
कुन्दमाल पीतमाल कमल केतकी गुलाब,
विकसित बन मोद भ्रमर गुंजत छवि न्यारी।
बोलत सारी मयूर, कोकिला मराल कीर,
कूजत अलि रटत नाम श्री जनकदुलारी।।
मंगलमय साज साजि, ठाढ़ी सब दरस काज,
करहिं मधुर स्वरन गान, जागो लाल प्यारी।।
जागे करुणानिधान, निरखहिं छवि सखि सुजान,
"रामचरण" दम्पति पर तन मन धन बारी।।

(4)

सुनि सखियन की गान धुनि, प्रीतम उठ सप्रीति।
निरखि प्रिया छबि छकि रहे, भव्य भावना रीति।।
मणिमय मन्दिर जगमगै, मणिदीपन की जोति।
अलकैं झलकैं बदन पर, लखि छकचौंधी होति।।
झुकत झूमि दृग रस भरे, मंद हँसनि रस देत।
'कनकभवन' सुख सेज पर, सोहत कृपानिकेत।।

प्रातःकाल जगाने के बाद के पद

(5)

आसपास सहचरी सब नूपुर झनकार करैं,
चम्पे की कली स्त्री मानों फूली वे समान की।
सौधन की लपटैं री दपटि भीर भौंरन की,
बीनादिक बजन लागे उधटित कल गान की।।
गोखन झरोखन के परदे उधारि दिये,
शोभा उभरन लागी कोटि शशि भान की।
मिटे हैं अमंगल भये मंगल "किशोर शूर",
जगमगाये उठे महल जागीं श्री जानकी।।

(6)

जगमगाय उठे महल जागीं श्री जानकी।
कनकभवन कलश ऊपर किरण परी भान की।।
अष्टसखी चँवर करै, सेज सुख निधान की।
आसपास फूले फूल, कुंज छवि लतान की।।
छाई धुनि अवधपुर के नारिन के गान की।
बरषैं सुरनारि सुमन, शोभा आसमान की।।
सकल देव करैं सेवा, चौकी हनुमान की।
सियमुख पर वारौं, द्युति कोटि चन्द्रभान की।।
"तुलसीदास" विनय करत, गति न मोहिं आनकी।
जय जय जय स्वामिनी जय, वल्लभा प्रिय प्रानकी।।

(7)

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रवीण वीण वेणु ध्वनि द्वारे, गायक सरस राग रागे।।
श्यामल सलोने गात आलस बस जँभात, प्रिया प्रेम रस पागे।
उनींदे लोचन चारु, सुषमा शृंगार हेरि, हेरि हारि मार भरि भागे।।

सहज सुहाई छवि, उपमा न लहै कवि, मुदित विलोकन आगे।
"तुलसीदास" निसिवासर अनूप रूप, रहत प्रेम अनुरागे।।

(8)

बाल भोग कीजै रघुवीर।
कनकभवन में रतन सिंहासन, संग सखिन की भीर।।
मेवा रस पकवान मिठाई, अरु अमृत सम खीर।
सुन्दर सरस सलोने व्यंजन, परसहिं सखि मति धीर।।
करि विनोद सखि हँसहिं हँसावहिं, लीला रस गम्भीर।
"अग्रअली" सन्मुख भरि झारी, ठाढ़ी लीन्हें नीर।।

(9)

रँगीले लाल बीरो लीजे मेरे कर से।
नागर पान सुगन्ध सुपारी, मधुर मसाला सरसे।।
मोती को चूना मनहर कत्था, पावत अति हिया हरषे।
"अग्रअली" सियपिय मुख दीनी, अघरन पर रंग बरषे।।

शृंगार आरती के बाद की स्तुतियाँ

(10)

भइ प्रकट कुमारी भूमि बिदारी, जन हितकारी भयहारी।
अतुलित छवि भारी मुनिमनहारी जनकदुलारी सुकुमारी।।
सुन्दर सिंहासन तेहिं पर आसन, कोटि हुतासन दुतिकारी।
शिर छत्र बिराजै सखिगण राजैं निजनिज काजैं करधारी।।
सुर सिद्ध सुजाना हनहिं निशाना चढ़े विमाना समुदाई।
वरषहिं बहुफूला मंगलमूला, अनुकूला सिय गुन गाई।।
देखहिं सब ठाढ़े लोचन गाढ़े सुख बाढ़े उर अधिकाई।
अस्तुति मुनि करहिं आनन्द भरहिं पायन परहीं हरषाई।।
ऋषि नारद आये नाम सुनाये सुनि सुख पाये नृपज्ञानी।
सीता अस नामा पूरनकामा सब सुखधामा गुणखानी।।
सिय सन मुनिराई विनय सुनाई समय सुहाई मृदुबानी।
लालनि तनु लीजैचरित सु कीजै, यह सुख दीजै नृपरानी।।
सुनि मुनिवर वानी सिय मुसकानी, लीला ठानी सुखदाई।
सोवत जनु जागी रोवन लागी, नृप बड़भागी उर लाई।।
दम्पति अनुरागे प्रेम सुपागे तेहि सुख लागे मन भाई।
अस्तुति सिय केरी प्रेम लतेरी बरनि सुचेरी सिर नाई।।

निज इच्छा मख भूमि ते प्रकट भई सिय आय।
चरित किये पावन परम बरधन मोद निकाय।।

(11)

भये प्रकट कृपाला, दीनदयाला कौशिल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनिमनहारी, अद्‌भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा, निज आयुध भुज चारी।
भूषण वनमाला नयन विशाला शोभासिन्धु खरारी।।
कह दुई कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता।
माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता।।
करुणा सुखसागर सब गुण आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रकट भये श्रीकन्ता।।
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया, रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसुकाना, चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई, जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।।
माता पुनि बोली सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।
कीजै शिशुलीला अति प्रिय शीला, यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।।

व्रिप धेनु सुर सन्त हित लीन मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गोपार।।

राजभोग के पद

(12)

भोजन करत भावते जी के।
अरस परस दोउ खात खवावत, हँसत हँसावत संग प्यारी के।
कीन्हें कछुक मनोरथ रघुवर, देत बनाई ग्रास मुख सिय के।।
हँसी चितई पिय ओर जानकी, रहि गयो कौर हाथ ही पिय के।
पंच भाव पर यह रस दुर्लभ, सो सुख जानत अलिगंन नीके।।
हरि सहचरी मनोरथ मन के, कृपा साध्य मिथिलेशलली के।

(13)

मिली जैंवत श्रीरघुवीर सिया, हिया हरषि निरखि सखि मोद भरैं।
बैठे कनकभवन मणि पीढ़न पर, घन दामिनी की दुति मंद करैं।।
भरि व्यंजन विविध सुधारि सुघर, सखि कमलकरन मणिथार धरैं।
हँसि परसहिं गावहिं पिकबयनी, अति मधुर मधुर मृदु सप्त स्वरैं।।

कोऊ कर पानी पात्र लिये, मणि झारी सरजू नीर झरैं।
पिय प्यारी मुख चितवहिं सजनी, सोई वस्तु देहिं चाह करैं।।
जब देत परस्पर कंवल मुखन, सो मुख चन्द्र छवि कहि न परैं।
यह 'रसिकअली' अद्‌भुत शोभा, दृग लखि न्योछावर प्रान करैं।।

(14)

अचवन करत राम सिय प्यारी।
सरयू तीर नीर अमृत की, नागरि कर धर झारी।।
हास विनोद परस्पर दोऊ, बाढ़ी प्रेम खुमारी।
कृपानिवास अली अचरा करि, परसत हेत संभारी।।

श्री श्री 108 श्री कनकभवन विहारिणी बिहारी जी की नित्य सायंकाल की स्तुति

(15)

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं। कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं। सन्मानिशालिपरपीतपरागपुजंम्।।
दूर्बादल द्युतितनुं तरुणाब्जनेत्रं। हेमामबराम्बरविभूषषितांकम्।।
कन्दर्पकोटिकमनीय किशोर मूर्ति पूर्ति मनोरथभवा भजु जानकीशम्।।

पद

(16)

जै श्री जानकी बल्लभ लाल।। मणि मन्दिर श्री कनक महल में, विपुल रंगीली वाल। जै श्री जै श्री जानकी बल्लभ लाल।। कोई गावत कोई वीणा बजावति कोई मृदंग करताल। जै श्री जानकी बल्लभ लाल।। श्री युगल प्रिया रिझवति दोउ लालन, छवि लखि भई सो निहाल। जै श्री जानकी बल्लभ लाल।।

(17)

रंग भरि जोड़ी सदा चिरजीबो। सदा बिहार करो रंग मन्दिर नित्य किशोर किशोरी।। सदा चिर.।। सदा सुहागिन की अनुरागिन, रंगी रहो बड़ भाग बड़ोरी, आलि भाग बड़ोरी प्यारी, भाग बड़ोरी। सदा चिर.।। प्रिय के प्राण बसों सिय सुन्दरि, सिय मन श्याम बसोरी।। सदा चिर.।। पिय की चाह सुचातिक लों रहि, सिय जू की माया स्वाति बरसो री, आलि स्वाति बरसो री प्यारी, स्वाति बरसो री।। सदा चिर.।। सिय मुख चन्द सुधारस द्रवो नित, पिय की नयन चकोरी।। सदा चिर.।। हमरे नयन प्राण को सरबस, अधिक अधिक रस सुख सरसो री आलि सुख सरसो री प्यारी, सुख सरसो री।। सदा चिर.।। श्री कृपानिवास उपास महल की, टहल लगो सी लगो री।। सदा चिर.।।

(18)

ललि लालन की जोड़ी मुबारक रहै। प्रिया प्रियतम की जोड़ी मुबारक रहैं।।
श्री जनक नगरिया बिमल बहरिया, ललित लहरिया श्री कमला बहैं।।
श्री अवध नगरिया बिमल बहरिया, ललित लहरिया श्री सरयू बहैं।।
श्री कनक महलियां रंग भरि अलिया, नित नई विमल बहारैं लहैं।।
तकनि झकनि मृदु हँसनि परस्पर, प्रेम सुधा रस धारैं बहैं।।
छकै जो यहि रस फिर न झँकैं जग, श्रीकान्तिलता जो चहैं सो लहैं।।

(19)

मैं वारि युगल पर वारि। भूपति जू के श्याम सुन्दर बर, गोरी श्री जनकदुलारी।।मैं.।।
नवल निकुंज नवल वनिता प्यारी, चहुंदिशा लसत अति प्यारी।।मैं.।।
गान सरस वीणा मृदंग धुनि, श्री युगलप्रिया बलिहारी।।मैं.।।

(20)

जय जनकनंदिनी जगतवंदिनी, जन अनंदिनी जानकी।
रघुवीर नयन चकोर चंदिनि, बल्लभा प्रिय प्रान की।
तव कंज पद मकरन्द स्वादित, योगिजन मन अलि किये।
करि पान गनत न आनहीं, निर्वाण सुख मानत हिये।
ब्रह्मादि शिव सनकादि सुरपति, आदि निज मुख भाषहिं।
तब कृपा नयन कटाक्ष चितवनि, दिवस निशी अभिलाषहीं।
तनु पाय तुमहिं तिहाय जड़मति, आन मानहिं देवहीं।
हत भाग्य सुरतरू [illegible] [illegible]रि, अनुराग रेड़हिं सेवहीं।
सुखखानि मंगलदानि जन, जिय जानि शरण जे जात हैं।
तव नाथ सब सुख साथ करि, तेहि हाथ रीझि बिकात हैं।
यह आस "रघुवरदास" की, सुखराशि पूरन कीजिये।
निज चरण कमल सनेह, जनक विदेहजा वर दीजिये।

(21)

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणं।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।।
कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरद सुन्दरं।
पट पीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनकसुतावरं।।
शिर क्रीट कुण्डल तिलक चारु उदार अंग विभूषणं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खरदूषणं।।

भजु दीनबन्धु दिनेश दानव दलन दुष्ट निकन्दनं।
रघुनंद आनन्द कन्द, कौशल चन्द दशरथनन्दनं।।
इति वदति तुलसी दास शंकर शेष मुनि मन रंजनं।
मम ह्रदय कंज निवास करु कामादि खल दल गजनं।।

(22)

"कनकभवन" नव सुमन कुंज में, खेलत खेल किशोर किशोरी।
लीन्हे कर कमलन बहु कमलन, करत केलि रस सिन्धु हिलोरी।।
पीत पद्म लै लाल चलावत, प्यारी ओर सुलक्ष्य बनाई।
आंगन रंग मिलावत हँसि हँसि, अद्भुत आनन्द उर न समाई।।
जनकनन्दिनी नील नलिनं लै, श्री रघुनन्दन ओर चलायो।
ललित कपोलन लगत मिल्यो रंग, निरखत प्रिया हास बरषायो।।
फूलन खेलत फूलत हैं हिय, प्रीति बढ़ावत करि चितचोरी।
द ग "जयरामदेव" सखियन के, निरखहिं छवि ज्यों तृषित चकोरी।।

(23)

युगल छवि देखत नयन सिरात।
जनु सुषमा सर मध्य लसत दोउ, नील पीत जलजात।
वदन किधौं छवि नगर बसत जहँ, सम्पति विविध लखात।
चोरि लेत चित को जब मृदु हँसि, करत परस्पर बात।
कबहुँ बैठि चौसर खेलत दोउ, हार जीत पक्षपात।
रूप भरी गुण भरी चतुराई, संग सखी दरसात।
विहरत "कनकभवन" आंगन में, कबहुं अटन चढ़ि जात।
देखत फिरत "रसिकअली" तहँ तहँ, जहँ जहँ जात विभात।

(24)

ये दोउ चन्दा बसो उस मेरे।
दशरथ सुत अरु जनकनन्दिनी, अरुण कमल कर कमलन फेरे।
बैठै सघन दुंज सरजू तट, आसपास ललनागन घेरे।
ललित भुजा दिये अंग परस्पर, झुकि रह केश कपोलन नेरे।।
चन्द्रवति सखि चँवर डुलावति, चन्द्रकला तन हँसि हँसि हेरे।
'रामसखे' छवि कहि न परत जब, पान पीक मुख झुकि झुकि गेरे।।

(25)

जय जय रघुवर किशोर जनकनन्दिनी,
विहरत नित अवध धाम सुषमा रति कोटि काम।
चपला घनश्याम गौर मोदकन्दिनी,
नील पीत वसन चारू 'चन्द्रिका किरीट हार।

श्री कनकभवन महिमा

सुमन वाण गेंदपाणी रसिक रंजिनी,
गावत जेहि अज महेश ध्यावत श्रीयुत रमेश।
शारदा गणेश शेष रचि प्रबन्धिनी,
अगुण सगुण जासु अंश नारदादि मुनि प्रशंस।
हंस कुल वसंत केलि विश्वनन्दिनी
मुनिजन यह ध्यान धरत, बिनु श्रम संसार तरत।
गावत कल कीर्ति वेद, भव निकन्दिनी।।

(26)

यगल छवि आज अनूप बनी।
कनकभवन शृंगार कुंज में, बैठी बनी ठनी।।
आसपास सहचरी संग लिये, ठाढ़ी सौंज घनी।
"रसिकअली" उर यह समाज बसो, लीला ललित मनी।।

सायंकाल ब्यारू के पद

शोभित आज मनोहर जोरी।
कनकभवन आनन्द मगन मन, राजत रसिक किशोर किशोरी।।
रसमय कोमल अंगन प्रफुल्लित, अवलोकनि रसकनि रस बोरी।।
जन 'जयरामदेव' उपमा नहिं, छवि पर वारों काम करोरी।।

दोहा– यहि विधि बीती निशि जबहिं कछुक घरी करि केलि।।
ब्यारू हित सब साज सजि, लाईं थार सहेलि।।

(28)

करत बियारी प्रियतम प्यारी
पुलिक परस्पर पाय पवावत, हँसति प्रफुल्लित मुख छवि भारी।।
चाखि चाखि व्यंजनन सराहत, सखिन चतुरता पर बलिहारी।
जन 'जयराम देव' सखि उचरहिं रसमय हास वचन रुचिकारी।।

दोहा– यहि विधि ब्यारू करि युगल, नयनन अति सुख देत।
कनक कटोरे दुग्ध सखि, लाईं प्रीति समेत।।

(29)

अमचन करत सिया रघुराई।
कंचन झारी जल सरजू की, सखी सुशीला लाई।।
चन्द्रकला कर देत अँगोछा, सुचि खरिका लैं आईं।
सुधामुखी सखि बिरियाँ पवावत, अतर देत सुखदाई।।
रूपशील शोभानिधि प्यारी, निरखत दृगन अघाई।
रामचरन सखि सुख सागर की, शीथ प्रसादी पाई।।

श्री कनकभवन महिमा

(30)

सुन्दर बदन विलोकि के नयनन फल लीजै।

जानकिवल्लभ लाल की सखि आरति कीजै।।

कुण्डल ललित कपोल पै झुकि अलक विराजै।

कण्ठा कण्ठ सुहावना गजमुक्ता राजै।।

पाग बनी जरितार की दुपटा जरतारी।

पटुका है पचरंग की मणि जटित किनारी।।

सिय जू के सोहै लाली चूनरी मणि ज्योति विराजै।

"रसिकअली" जू की स्वामिनी अतुलित छवि छाजै।।

शयन समय के पद

(31)

अब हमारे प्राण प्रियतम प्यारे अलसाने लगे।

छिन हिं छिन अंगड़ाइयाँ ले ले के जमुहाने लगे।।

चंचलाहट हट गई उत्पन्न भोलापन हुआ।

नींद से माते नयन नव कंज सकुचाने लगे।।

दुसरी नौवत बजीं घड़ियाँ लगीं दीन्हीं गजर।

पायरू आये अपर पहरे को बदलने लगे।।

रैनहू बीती बहुत नभ मध्य उड़गण छा गये।

गीत राग विहाग भी गायक गुनी गाने लगे।।

ले चलो 'हरजिन' उठा के प्यारे को सुख सेज पर।

सैन छवि निरखन को अब मम नयन ललचाने लगे।।

(32)

कनकभवन की विहारिणीं श्रीस्वामिनी जू।

करुणा कृपालुता दयालुता की धाम है।।

भक्तन पे राखतीं सदैव ही दुलार अति।

सखिन पे राखतीं सनेह अभिराम हैं।।

करतीं सदैव ठकुराई सब लोकन की।

पापिन को पक्ष करिबे में सरनाम हैं।।

कवि 'जयरामदेव' जिनके स्वभाव ही पे।

रीझि रीझि मोहित ह्वै बिके प्रभु राम हैं।।

(33)

कमलदल नयनन नींद भरी।

कनकभवन सुख सुमन सेज पर, सिय पिय छवि छहरी।।

अधरन मंद हंसनि झलकैं, मुख चन्द्र किरण लहरी।
मानहुं शोभा सकल जगत की, अधरन समिटी ढरी।।
सजग भई सब द्वारपालिका, लेकर फूल छरी।
जनु 'जयरामदेव' थिर भइ आनन्द नदी गहरी।।

(34)

महल में शोर करौ जनि कोय।
कछुक रहस बस कछु आलस बस, जनकलली गई सोय।।
नूपुर दाबि चलौ मेरी सजनी, तनक झनक नहिं होय।
पहरे वाली सजग ह्वै रहियो, आवागमन न होय।।
नील मणिन के दीपक इत उत, अब धरि देहु संजोय।
'अग्रअली' आनन्द मगन मन, रहि रसि माहिं समोय।।

विनय अनुराग के पद

(36)

जै जै सदा करुणा की निधान कृपा रसरंग में बोरी की जै जै
जै जै सखनी की प्राण अधार प्रियामुखचन्द चकोरी की जै जै
जै जै महाछविराशिकलानिधि प्रीतम प्रेम विभारी की जै जै
जै जै सदा निमीबंश उजागरी श्री मिथिलेश किशोरी की जै जै
जै जै मनोहर सुन्दर श्यामल छैल छली सरकार की जै जै
जै जै सनेहिन के रसिया रस प्रेम के दानी उदार की जै जै
जै जै चमाचम कुन्डल क्रीट के धारी सुशोभा अपार की जै जै
जै जै सदा करुणामय श्री रघुनन्दन राजकुमार की जै जै

(37)

दृगन भरि छवि लखु सिया रघुवीर।
कनकभवन राजत प्रिया प्रीतम श्यामल गौर शरीर।।
फूल छरी राजत प्यारी कर प्रीतभ कर धनु तीर।
अंग अंग नवरंग रंगे वर लसत सुरंग रंग चीर।।
नजर बाग अनुराग लाग फल नटत मोर कल कीर।
नरदेही सुमिरन बैदेही हेतु बदत मुनि धीर।।
ह्रदय पत्र लेखनी प्रीति तरु तत्व मसी मुद नीर।
जानकी वर दम्पति छवि सम्पति लिखि ले हियं तसवीर।।

(38)

चिरंजीवी हमारी, दुलारी सिया।
जाके हित मिथिलेश सुनैना, जन्म जन्म तप बहुत किया।।

श्री कनकभवन महिमा

गणपति गौरि महेश कृपा ते, पूरी भई अभिलाष हिया।
अब दिन दिन आनन्द बढ़त है, सुख पावत मिथिलेश जिया।।
महिमा जिनकी वेद बखानत, भक्तन हित अवतार लिया।
'मधुरअली' जिनके प्रिय दूलह, त्रिभुवनपति अवधेश पिया।।

श्रीजानकी–वन्दन

उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करी सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्।।

श्रीरामचन्द्र स्तुति

नमामि भक्तवत्सलं कृपालु शील कोमलं,
भजामि ते पदांबुजं अकामिनां स्वाधामदं।
निकाम श्याम सुंदरं भवांबुनाथ मन्दरं,
प्रफुल्ल कंज लोचनं मदादि दोष मोचनं।।1।।
प्रलंब बाहु विक्रमं प्रभोऽप्रमेय वैभवं,
निषंग चाप सायकं धरं त्रिलोक नायकं।
दिनेश वंश मंडनं महेश चाप खंडनं,
मुनीन्द्र संत रंजनं सुरारि वृंद भंजनं।।2।।
मनोज वैरि वंदितं अजादि देव सेवितं,
विशुद्ध बोध विग्रहं समस्त दूषणापहं।
नमामि इंदिरा पतिं सुखाकरं सतां गतिं,
भजे सशक्ति सानुजं शची पति प्रियानुजं।।3।।
त्वदंघ्रि मूल ये नराः भजंति हीन मत्सराः,
पतंति नो भवार्णवे वितर्क वीचि संकुले।
विविक्त वासिनः सदा भजंति मुक्तये मुदा,
निरस्य इंद्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकं।।4।।
तमेकमद्भुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं,
जगद्गुरूं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलं।
भजामि भाव वल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं,
स्वभक्त कल्प पादपं समं सुसेव्यमन्वहं।।5।।
अनूप रूप भूपतिं नतोऽहमुर्विजा पतिं,
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे।
पठंति ये स्तवं इदं नरादरेण ते पदं,
व्रजंति नाथ संशय तवदीय भक्ति संयुताः।।6।।

।। इति श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासकृत श्रीरामचन्द्र स्तुतिः सम्पूर्णा।।

***

अध्याय 12

कनक भवन में होने वाले उत्सव

श्री राम जन्मोत्सव (रामनवमी) चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल 9 तक शाम को रामजन्म की बधाई होती है। नवाह्न–रामायण कथा प्रवचन भी होता है। नवमी के दिन, दिन में 12 बजे जन्मोत्सव होता है। आरती का दर्शन अति आनन्ददायक तथा प्रसाद भी वितरण होता है।

श्री जानकी–जन्म–उत्सव वैशाख शुक्ल पंचमी से पूर्णिमा तक नित्य शाम को बधाई होती है। नवमी को दिन में 12 बजे जन्मोत्सव मनाया जाता है। पूर्णिमा को श्री चारुशीलाजी का जन्मोत्सव होता है।

ज्येष्ठ के किसी दिन फूलबंगला की झाँकी होती है। फूलों के काम का बंगला बनाकर उसमें श्रीकनकभवन विहारी जी युगल सरकार की झांकी होती है।

श्रावण झूला–श्रावण शुक्ल तीज से आरम्भ होकर पूर्णिमा तक नित्य नवीन झांकी सजावट के साथ होती है। झूले पर श्री कनकभवन विहारी जी युगल सरकार विराजते हैं। श्रावण तीज की मणिपर्वत जाने की सवारी का दृश्य दर्शनीय है।

भाद्रपद में जन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी के उत्सव होते हैं।

क्वार में नवदुर्गा पूजन नवाह क्वार सुदी 1 से 9 तक होता है। शस्त्रादि पूजन, ध्वजारोहण का कार्यक्रम विधिवत मनाया जाता है। दशमी के दिन सायंकाल दरबार की झांकी होती है। क्वार सुदी पूर्णिमा को शरद पूर्णिमा का दरवार होता है।

कार्तिक में श्रीहनुमत्–जयन्ती, महालक्ष्मी पूजन, दीपावली, अन्नकूट, तथा ग्यारस (देव उत्थानी एकादशी) का पूजन समारोह के साथ होता है।

अगहन शुक्ल पंचमी को श्री सीताराम जी का विवाह महोत्सव होता है। बारात (प्रोसेशन) की सजावट द्वारपूजा तथा अन्य विधिवत विवाह सम्बन्धी पूजन होकर श्री युगल सरकार कनकभवन विहारिणी विहारी जू की भांवरी का दर्शन अति उत्साह के साथ होता है। अगहन शुक्ल सप्तमी को श्री रामकलेवा दरबार की झांकी होती है।

पूस बदी दूज को गौना उत्सव की झांकी व दरबार होता है।

माघ सुदी पंचमी को बसन्त उत्सव मनाया जाता है। दरबार सायं काल में होता है। पंचमी के बाद होली तक प्रति मंगल, एकादशी, अमावस्या व पूर्णिमा को झांकी होती है।

फाल्गुन पूर्णिमा को दिन में 3 बजे से 5 बजे तक रंग होली का दरबार होता है।

चैत्र बदी 1 को सायंकाल में दरवार व श्री रूपसखी जी की होली अबीर गुलाल की होती है।

नोट–उपरोक्त सभी उत्सवों में प्रसाद वितरण आदि का विशेष प्रबन्ध किया जाता है।

***

अध्याय 13

कनकभवन की अष्टयाम सेवा पद्धति

श्री जानकी वल्लभो विजयते

मंगल बल्लभ सिंगार अरु राज–भोग उत्थान।
संध्या, ब्यारू सेवनं, शैन लौं द्वै विधि जान।।

मंगल आरती (भीतर)

पट खोल कर मंदिर में प्रवेश करके श्रीचरण चांप कर जगाना। पर्य्यंक प्रसाद हटाना। शय्या से उठाकर सिंहासन पर पधराना। धूप, दीप, खोयेदार मिठाई, अथवा मक्खन–मिश्री अथवा फल अर्पण करना। जल रखना, मन्दिर की कोठरी में छिप जाना। 5 मिनट बांद आकर आचमन कराना, साफी फेरना। दो बत्ती की आरती।

बल्लभ आरती (भीतर)

शौचादि क्रिया की भावना नेत्र बंद करके करना। आचमन, हाथ पैर साफी पौंछना, फिर आचमन के अनंतर प्रभाती कराते सगय तीन बार आचमन कराकर साफी से पौंछना। धूप दीप फल मेवा अर्पण करना, जल रखना। मन्दिर की कोठरी में छिप जाना। 5 मिनट बाद आकर आचमन कराना। साफी फेरना, दो बती की आरती।

श्रृंगार आरती (खुला परदा)

भीगी हुई साफी से सर्वांग पोंछना, देहली और संपुट में स्वास्तिक चिन्ह बनाना, संपुट में सालिग्राम जी का स्नान, चंदन–पुष्प–तुलसी अर्पण। श्री हनुमान जी का स्नान, देहली, सिंहासन पूजना तिलक स्वरूप, पोशाक पहनाना दिन के अनुसार। श्रृंगार करना, आभूषण सजाना। माला पहनाना। धूप दीप बालभोग अर्पण करना। जल गिलास में रखना। कोठरी में छिप जाना। 5 मिनट बाद आकर आचमन कराना, साफी फेरना, किरीट चंद्रिका, धनुष–बाण–पुष्प धारण कराना। पान, दर्पण दिखाना। इतना कार्य पर्दे के अन्दर करना। इसके बाद पर्दा हटाकर जाड़े में दर्शवर्तिका, गरमी–बरसात में पुष्प तुलसी की आरती। पर्य्यक प्रसाद, मंगल और वल्लभ प्रसाद तथा गालभोग बांटगा।

राजभोग आरती (खुला परदा)

पीढ़ा थाल धरने के लिए रखना, किरीट चंद्रिका धनुष बाण पुष्प हटा देना। चार गिलास में जल रखना। धूप दीप राजभोग थाल अर्पण करना, आचमन कराकर सब वस्तुओं का पांच–पांच गफ्फा बनाकर निवेदन करना। बाहर निकल आनाा, 15 मिनट बाद जल चलाने भीतर जाना। बाहर निकल आना, 15 मिनट बाद आचमन, पान परिष्कार कराना। थाल भंडार वापस देना। इसके बाद पर्दा हटाकर केवल किरीट चंद्रिका धारण कराकर पुष्पारती कराना, पान बांटना। फिर किरीट चंद्रिका हटाकर वस्त्र ओढ़ाकर शयन। पट बन्द करके बाहर निकल जाना।

उत्थापन आरती (भीतर)

आवरण हटाकर आचमन कराना, साफी फेरना। वस्त्र आदि संवारना। धूप दीप शर्बत अथवा नमकीन समोसा आदि अर्पण करना, जल रखना। कोठरी में छिप जाना। 5 मिनट बाद आचमन साफी किरीट चंद्रिका धनुष–बाण–पुष्प धारण, पान दर्पण दिखाकर पुष्प–तुलसी की आरती करके परदा खोल देना।

सन्ध्या आरती (खुला परदा)

धूप दीप खोयेदार मिठाई अर्पण अथवा अन्य कोई सामयिक पदार्थ अर्पण, जल रखना। कोठरी में छिप जाना। 5 मिनट बाद आचमन कराकर साफी फेरना, इतर–पान निवेदन करना। जाड़े में दशवर्तिका, गरमी–बरसात में पुष्प–तुलसी की आरती करना। प्रेमियों को योग्यातुनासार हार और पान, इतर देना।

ब्यारू आरती (खुला परदा)

थाल धरने के लिए पीढ़ा रखना, किरीट चंद्रिका धनुष–बाण–पुष्प हटा देना। चार गिलास में जल रखना। धूप दीप ब्यारू थाल अर्पण करना। आचमन कराकर पांच गफ्फा निवेदन करना, दूध–पूरी अर्पण। बाहर निकल जाना। 15 मिनट बाद आकर जल चलाकर फिर बाहर निकल जाना। 15 मिनट बाद आचमन, थाल वापस, पान परिष्कार। इसके बाद पुष्प–तुलसी की आरती करके प्रसाद बांटना।

शयन आरती (भीतर)

किरीट, चंद्रिका, धनुषबाण–पुष्प हटाकर सब पोशाक उतारना। धोती और हल्की साड़ी पहनाना। सिंहासन से उठाकर पर्य्यंक पर शयन कराकर चादर ओढ़ाना। धूप दीप कलाकन्द और गिलास में जल पर्य्यंक के पास रखना, पान बीड़े रखना। दो बत्ती की आरती पट बन्द करके बाहर निकल जाना।

नोट– (1) मन्दिर में प्रवेश करके झाडू लगाकर हाथ धोकर साफी से नाक और मुंह बांध लेना चाहिए।

(2) प्रत्येक कृत्य में श्री युगल–मंत्रराज का अनुसंधान करते रहना चाहिए।

(3) काम–क्रोध की दशा में मन्दिर के बाहर निकल कर स्नान करके मन्त्र जाप कर फिर सेवा में जाना चाहिए।

(4) धनु की संक्रान्ति में खिचड़ी और मकर में तिल के लड्डू बल्लभ भोग समझना चाहिए।

(5) जाड़े में 6 बजे, गरमी–बरसात में 5 बजे मन्दिर–पट खुले। तीन घंटे के बाद शृंगार आरती होनी चाहिए।

***

अध्याय 14

श्री कनकविहारी जी की आरती एवं दर्शन की समय-सारिणी

ग्रीष्मकाल	शीतकाल
आरती प्रातः 8.00 बजे से 10.30 तक दर्शन	आरती प्रातः 9.00 बजे से 11.00 बजे तक दर्शन
शयन आरती दोपहर 11.30	शयन आरती दोपहर 12.00 बजे
दर्शन सायंकाल 4.30 बजे से 6.30 बजे तक	दर्शन सायंकाल 4.00 बजे से 6.00 बजे तक
संध्या आरती 7.00 बजे से 8.30 बजे तक दर्शन	संध्या आरती 6.30 बजे से रात्रि 8.00 बजे तक दर्शन
शयन आरती रात्रि 9.30 बजे	शयन आरती रात्रि 9.00 बजे

नोट– उपरोक्त समय सारिणी विशेष उत्सव पर्व पर परिवर्तनीय है।





अध्याय 15

'श्री वृषभान विनोद' के कुछ चुने हुए पद

।। फाग।।

नहिं तो नेह नदी बह जाना। माया मोह कूल दोऊ तट विषय जलाशय माना। दुख सुख कमल प्रफुल्लित जामें मोमन भ्रमर भुलाना। नौकानाम कृपाकेवट है करिया श्रीगुर ज्ञाना। रामप्रिया मोह पारलगै हैं महलटहल असथाना।।120।।

जोमन भजन करत अलिस्यावै भ्रग ज्यों जल को धावै। परदारा परघनके कारन नाहक रार बड़ावै। सीता पति जशगान करत नहिं माया मोह फसावैं। रामप्रिया कह अवसर चूके फिर पाछे पछतावै।।123।।

देखौ मनकी अजब कहानी मतसर रहत दिमानी। सीतापति सनमुख नहिं आवत जहाँ प्रेम रसखानी। वहुत भाँति धिक्कार देत चित आव नहिं गिलानी। रामप्रिया करमन वस भूलत सार वस्तु नहिं जानी।।125।।

।। फुटकर पद।।

किशोरीजी राख सरन मोह लीजे। दीन दयाल प्रणितहित पालक अवगुन च्त्ति न दीजे। तुम सम हितू नहीं जग मेरौ अर्ज कान सुन लीजे। अलीवृषभानकुँवर विनवत हैं अपनौ करगह लीजे।।181।।

करूणाकर अवधछैल मोपे मिहिर कीजे। अरज करौंश्रवन सुनौ विनय मानलीजे। अवध नगरकौ निवास चाहौं निज महल खास प्यारी चरणौके आस पास राख लीजे। काम क्रोध प्रवल चोर सवमिल हिय करौजोर तुमविन को करैगौर अभय दान दीजे! तनगुण महिमाअपार गाऊं हरदम समार निरखौं छवि बारबार ह्रदय प्रेम कीजे। अचल प्रीति जुगल नाम और आससे न काम मिथला अवध धामवास जामें अघछीजे। रसिक मंडली मेंजाउं तिनसंग तवगुनन गाऊं रसना अपनी सिराऊं जगत चाह खीजे। जनकसुता अतिदयाल मोपर हूजे कृपाल रामप्रिया सहचरी नित आनदरस भीजे।।182।।

अव कृपादृष्ट कीजे निमराज की दुलारी। तु विन को सुनैअरज श्रवन देहमारी। सियावरसे लागी आस और सवनतै निरास राखिंये चरनौं के पास राजकुँवरि प्यारी। यह मन चंचल गमार धावत चहुँओरपास क्षिणभर नहिं लेत स्वास यैसौ विभचारी। तुमहौं सुखकी निधान दुसह दोष समन जान सुर नर मुनयेही मान सरन गहत मारी। मोमति सुधार दीजे भव से उवारलीजे अवके निगाहकीजे वलजाउं मैं तिहारी जप जोग को न जानौं तप ज्ञान को न मानौं सियानाथ ह्रदय आनौ साकेत के विहारी। द्रढ़भक्ति दानपाऊं सिंगार गुन सराऊं नच गायके रिझाउं पिया धनुषवानधारी। यह आसको पुजइये प्रिया सहचरी अपनइये मन भाव ज्योंहिराखिये मैं पालीहौं तिहारी।।183।।

श्री कनकभवन महिमा

।। पद ।।

सुन मन रामचरन रतिमनिये। विषय विराग तजौ सव वन सम सुख सागर जिय अनिये। जीवन प्रान भजौ निसवासर उनहिके गन गुन गनिये। मात पिता गुरु स्वामी सव प्रभु सुखदायक जिय जानिये। कौसिल पाल कृपाल कल्पतरु जन जिय प्रीति न तजिये। वृषभानकुँवर मन हठ कर रोकत नाहक झूठ न मनिये।।211।।

जपि है न रामनाम जो ना सुख पाइहैं। छाड़ दे गलीन चित्त रामकौ निहारलै। कोट जन्म के जे पाप दूर सव भगाइहैं। सुखकेनिधान सव दुखकेनिवार नाम सरन प्रतपाल तेरेकर्म कौ छुटाइहैं। वासना उपासना की आसा सव छोड़दै नामको प्रभाव भयैं सकल सुक्रत जागहैं। जोग जाग जप विराग देखत कलंकाल भाग जागरे विमूढ़ वात आगली वनाइहैं। वृषभानकुँवर दिवसजाम जुगलनाम जुगलधाम प्रेम सहित लैहै तव सयवर अपनाइहैं।।213।।

सव तज रैहौं सिया पद लागी। कृपा भई मतजागी। निस दिन टहल महल की करहौं मानौंगी बड़भागी। जग उपहास कौ कौन परेखौ सदां मिलै अनुरागी। कुल परवार त्याग सुख पैहौं जुगलप्रेम रस पागी। दीन जान राखौ अपनौ कर रामप्रिया वर मागी।।225।।

अवतौ कृपा करौ राम सरन आयी तेरे। दिनजान विपत छीनकीजे निजदास चीन सवप्रकार समररथ प्रभु पाऊं कांवड़ेरे अघ अधाय कीनैं सो जानत करुणानिधान अंतरजामी प्रभाव तुम से नछिपैरैं। अबकी वारकरउधार तेरी बलजाऊं नाथ गावत जस निगम नाथहौ अनाथ केरे। सरस लाग ह्वदय प्यास चात्रिक ज्यौं रटत जाग कव मिलहै स्वांत बंदफलै आस मेरे। रामप्रिया मनहुलालसिया वरसै मेरौ काज औरन सें रहौ निरास महल वास नेरे।।229।।

राघौजी के चरनकमल सुखदैन। जाउर वसत तरत भवसागर होत सो मंगल भौंन। हरन विपत्ति। मोहतमनासन जगसैं रहतसुखैन। रामप्रिया सेवहौं निसवासर आनद करन सोचैन।।235।।

प्यारीलागैं अवधकी गलियां। जहँ विहरत प्रीतम सिया अलियां। वनप्रमोद लागत अतिसुंदर सघन द्रुमन विकसत नवललियां। उत्तर वहत रहत सरजूजल नितनव निरखतरहत लहरियां। रामप्रिया हिय वसतसदा ही अति अनूप सिया पियाकी नगरियां।।236।।

क्यौंतरसावत छैल चिकनियां अजब अदा दरसाइ लुभाई। निठुर भये अब मनके हरनियां। हाड़दई विरहानल वाड़ी निरमोही सै लागी लगनियां। रामप्रिया दरसन विन तरसत सवके हौ राजा हमारे हौ रिनियां।।244।।

नहिंहैं तुमरीप्रथम कैसी वतियां। हम वरजी जवतौं नहिं मानी अवकैसी भई पियातेरी मतियां। नेह लगाइ जान जिय भोरी फिर पाछै कीनी तुम छल घतियां। कहत और कछुकरत औरहौं नहिंवड़वत अनुहर कुल जतियां। वृषभानकुँवर की विगरी विसारौ करुणासिंधु गहौमेरी वहियां।।249।।

श्री कनकभवन महिमा

।। रेखता।।

सियाबरप्यारे अवधपतिवारे दरस टुकमोह को दिखाजारे। मुकुट सिरधारी जुलफ घुँघरारी तनक हँसकै वतराजारे। नयन रतनारेभँवर कजरारे रसिक लख जियराजुड़ाजारे। वृषभानअली तुय सरनलयो मोह जुगल चरनों में बसाजारे।।257।।

।। पद।।

जहां देखौ तहां राम मईहै। नभ थल गगन पवन चारौदिश राम अंश में सिद्ध लईहैं। जड़ चैतन थावर जंगममें देख परत सबमें विजईहैं। देव अनुज किंनर सुरनरमुन पुरषारथ सव आप दईहै। रवि नसिपति तारागन संजुत्त रा मकारसें जोत भईहै। वेद पुरान कल्प जुग निसदिन काल निमिख जिनकी रचईहै। सिद्ध सरित सर जहांलग रचना चित्रविचित्र देखत सदईहै। रामप्रिया उरअंतर वासी सियावल्लभ अनुराग सईहै।।263।।

सुनौ प्रभुछाड़ै नाहि वनैं शरनागत पालैं वनैं। हौं अघखान अजान मंदमत कलमल रहत सनैं। अबकीबार निहार कृपाकर दीनन दीन गनैं। अधमउधारन जग यश पावन मैं निज श्रवन सुनैं। समरथ सव लाइक गुणगाहिक वेदन सुयश मनैं। सबआशा तज रहौं द्वारपर डगौं न प्रण अपनैं। रामप्रिया करुणागुण आगर वांधिचरन द्रढ़ मनैं।।264।।

मिथिला निजधाम सिय प्यारी कौ सुखदाई। नौऊनिध अष्ट सिद्ध रहततहुँलुभाई। कमलातट पावन सखी विरहतनित अलिन संग सारद लख रहतमौन सकस नांह गाई। चिद विलास सुख निवास ऐकै ही रस सर्व काल काम क्रोध लोभ मोह कतहुं ना दिखाई। चहूंओर वनअनूप कंचनमय सिद्ध रूप जन्म सुफल करन सेत पटरित रहिछाई। ब्रह्मा शिव सुथलजान विष्णु संगमें जुआन तिरहुत तातैं कहाय कीनयज्ञ आई। विघ्न रहित सिद्ध सहित कीन्हैं मुनवर निवास जोजो मनभावत सोपावत अघाई। बारबार विध मनाऊं एहीपुर जन्मपाऊं सीता जुगचरन ध्याऊं मन रामप्रिया भाई।।267।।

।। गजल।।

नरदेह कौ तन पायकै भजनाम को हरदं। शिवमन मानस मराल विहरत हरदं। श्यामलकिशोर सिया संगमें हरदं। छवि सोहना छवीला सुखसारकौ हरदं। करुणानिधान भक्तवतसल पासमें हरदं। वृषभानअली जुगल ध्यान ध्याबधु हरदं। सिया नृपतलाल महल टहल देंहगे हरदं।।271।।

सिया स्वामनी कृपाल राख लीनी हमकौं। काटी अनेक विघनैं गह लीनौ करकौं। लख परकर अपनीमें अभय कीनी हमकौ। दीनौं अनेक सुःखन भीनौं अनंदकौ। खासी खबासी पदवी दुर्लभ सुनीदंको। वरदीजे करुणाकर नहिं भूलौं तुमकौ निस दिन विलौकौं जुगल चंद्र चात्रक मनकौं। वृषभानअली भली बात नामहै सबकौं। छवि माधुरी निहार करौं पावन तनकौं।।272।।

श्री कनकभवन महिमा

।। चित्रकूट के ।।

वन वीथन राम चलेआवैं। पाछै अनुज विच सिया राजै सीसजटा करधनुषबिराजै कटि सरतून कसैंआवैं। शोभा सीलधाम सुखमाके कोठनकाम लख सकुचावैं। रामप्रिया देखौं बड़भागिन ग्रामवधू लख ठगजावैं।।273।।

चित्रकूट अति विचित्र देखौ द्रगसजनी। कामद्रुगन कल पवृक्ष अभिमत फल दैवी। चहूँओर वनअनूप पछिम दिस भरत कूप जाकी महिमा अनूप जातनाहिबरनी। तापस मुनि सिद्ध बसत जुगल नाम अमित जपत तिनहिं देख कलुष नसत त्रैताप भंजनी। मंदाकिनी गंमाघार पैसरनी सँग विहार मंजत सुक्रती सुजान दुखदरिद्रनासनी। श्रद्धा संबल से हीन ल्याई सिया दीन चीन रामप्रिया चरनकमल निकटवासनी।।274।।

चितचेत चतुर चित्रकूटचलौ। सुखकौधाम प्रियाप्रीतमकरैं विहार निसजाभ भलौ। चरनचित रजनैंन लगावहु नामजपौ त्रैताप दलौ। रामप्रिया सब भांत भरोसौ सुक्रतविटप सव भांत फलौ।।275।।

चितचोर लीन चित्रकूट रहसभूम जानी। विहंरत रघुवीर संग जनक सुता अतिउमंग विहँसत पियावदन निरख शोभा सुख खानी। रामप्रिया जहँ वसत षटऋत सुभ मोद लसत बीनालेकरत गान सादर सुखदानी। अरसपरस हावभाव प्यारीपियकौ सुहात रामप्रियाछविनिहार धन्नभाग मानी।।276।।

।। गजलैं ।।

सखी रघुराज मेरे दिलका प्यारा है। कभी नहिं होत है घरीपल छिन को न्यारा है। सखी वह छैलकी हेरन करूं क्या उसकी छविबरनन हँसन हियमें बसी जबसैं नहीं दिलको सँभारा है। लगी अवनैन की गांसी छुटै नप्रेमकी फांसी करौं क्या बस नहीं मेरा कठिन विरहानेजारा है। अलीवृषभानकुँवर की रहै नितचाह मिलनै की दरस दीजे कृपा करकैं तुही जीवन हमारा है।।296।।

रघुराजसें कर दोस्ती सब सुख कौ सार है। सुंदर किशोर जांनकी जीवन सो यार है। तप दान तीरथ कोटन सावभँवर जाल है। भवसिंधु दुस्तर तारवौ सिया चरनौं नवार है। करुणानिधान सीलता अद्‌भुत अपार है। वृषभानअली जुगल छवि निस दिन निहारहै।।297।।

रघुराज सै कर दोस्ती दिल लाग है कै न लाग है। मुख चंद्र जुग को चकोर चित कर चाहिहै। सिरताज जुलफन फंद में दिल फांस हैं कै न फांस है। द्रगकंज खंजन से विलोकन लागि है कै न लागि हैं। छवि माधुरी अवलोक कै सुखपाय है कै न पाहिहैं। राम यश दृढ़ प्रीतिकर मुख गाहिहै कै न गाहहैं। कानन कथा रसरास की सन भाय है कै न भाय है। शुभ अशुभ जग की वासना मन छाड़ि है कै न छाड़ि हैं। सुख दुख नफा जग हानिका भय त्यागि है कै न त्यागि है। सत संग रसकन की सभाको धाय है कि न धाय है। पिया सहचरी जुग चरन रज हिय धर है कै न धार है। जो लाग हैं सिया जू शरन सुख पाइहैं कै न पाई हैं।।302।।

जिन राम यश गाया नहीं काविद भया तौ क्या हुवा। जुग चंद्रछवि छाकी नहीं अनुरागरस चाखा नहीं जप जोग कर छापा दिया माला लिया तो क्या हुवा। सख सिंधु में बूड़ा नहीं सतसंग को करता फिरा सियानाथ को जाना नहीं महली हुआ तौ क्या हुआ। दुनियां में आके क्या किया औवलफजल बकता फिरा कोपीनकट करवालिया धूनीतपा तो क्या हुआ। वृषभानअली स्वामिनी चरनौं का आश्रय न लिया मखदान फल चाता फिरा ज्ञानही हुआ तौ क्या हुआ।।303।।

।। पद।।

सुआनद मंगल गाइयेरी। भूप भवन मिल जाइयेरी। महरानी सनमान सवनकौं आदरभाव सवाई येरी। वाजें वाजन मधुर सुरनसे नाचें हो भाव दिखाइयेरी। रामप्रिया सिया जन्म महोत्सवपूरनपुत्रन पाइयेरी।।318।।

श्रवनसुयशसुन आइ द्वार। तुम तो अधम उधारन नागर हमरी दार कस करतवार। रामप्रिया बलिहारी नामकी अबकी भवसागर से करहु पार।।319।।

फूलन की सारीसो है गोरे गोरे गात। फूलन की वंदनी फूलन की चंदनी फूलन ताटक पैरे फूलन के पात। फूलन के सीसफूल चोटी मुखकंव मूल फूलन के वाजूवंदशोभा सरसात। फूलन की चोली सोहै फूलन के हारगलैं फूलन की चंमकली मन अरुझात। फूलन के बंगला फूलन के परदा फूलन परजंक पौढ़े मदन लजात। देखी नभ चांदनी सिया मन भावनी रामप्रिया सोभा लखहीय न अघात।।332।।

लगनमतवारी काहू न डरावैं। लोक लाज कुल कान बड़ाई जात पांत नहिं भावै। जासे लगी भरी दिल सोई और न कछू सुहावैं। नेही मरिहम होईसों मन नैह रघुवर सरसावैं। रोवै हसै गाय बौरौज्यों मौन रहै जकजावै। मस्त रहै दिलभर चरचामें अवर चैन नहिं पावैं। रामप्रिया कहि कासौं कहिये रघुवर छैल मिलावैं।।333।।

होसियाप्यारे लगन न छूटै। लोकलाज कुलकान वड़ाई जातपात छिन टूटै। पहिर फकीरी खाकरमाई रसिक प्रीतम रस लूटै। रामप्रिया कहै प्रानबल्लभसे तुम राजी जग रूठै।।338।।

मेरौ विन दरशन जिय तरसै कब छवि मिलै नजरसैं। निस दिन चैन परत नहि सजनी द्रग असुवन झर बरसै। बिन नृपलाल विहाल भई अब विरह विथा बहसरसै। रामप्रिया कब मिलिये अवधपिया चरन कमल रजपरसैं।।341।।

।। झूला।।

रँगबरसै रंगीले झूलन में। चलौरी चलौ मिल देखन चलिये झूमत स्यामा स्याम कलोलन में। हरीहरी भूम नये द्रुमपल्लव श्रीसरजू के कूलनमें। सहचरि हरष झुलावत सब मिल गावत रागमलारनमें। रामप्रिया येहि बरमागत बसौसदा द्रग कोइन में।।342।।

श्री कनकभवन महिमा

।। पद।।

तुमै प्रभु वाँह गहेकी लाज। आई दीन सरन आरतजन सुनौ गरीब निवाज। अधम उधारन विरद तिहारे सुन आई महराज। रामप्रिया सव भांत तुमारी तुम त्रिभुवन सिरताज।।345।।

सखीमें आज लखे सीतारमन। कनक प्रजंक अंक प्रीतम के रस हेरन गलवाह धरन। उमग उमग चाहत रसक्रीड़ा चितवन चंद्र चकोर विचरन। हावभाव विलसत नवनागर रामप्रिया आनँद भरन।।346।।

लागी लागीरे लगन मतटोरौ। जोकछु चूकपरी हैं हमसैं सो विसराय कृपा कर हेरौ। प्रनतपाल हित रसिक चूड़ामनि रदाव्ली जगत पिय तेरौ। बारबारमेरी येही विनती रखिये कहीं निधा नहि फेरौ। रामप्रिया मिथला कै नातै आई शरण गहौ कर मेरौ।।348।।

देखौरी दोउ प्रानप्यारे कौसिलपत के राजदुलारे। स्यामल गौर किशोर मनोहर सुखसागर नागर रसभारे। गज गत चलन हसन चितचोरत त्रिभुवन सुंदरतासैन्यारे। सिरपरक्रीट खौर चंद्रन की अलक कपोल भ्रमरमदहारे। मौतिन माल पदक की शोभा भूषन बसन विचित्र समारे। वृषभानअली यह अलौकिक जपतप जोग ज्ञान सव वारे।।349।।

मनमोहनीसूरत स्यामरी को नहोय लखबाबरी। कुल मरजाद त्याग हैं इनपैं कहभिथलाकी नागरी। तैंसहिं नवलकिशोर रावरौ तैसहिं सिया छविआगरी। रामप्रियासंजोग रचौ विधि लैहै द्रगन कौ लाभरी।।350।।

वनै शिवलोचन तीरथराज। अनुपम प्रेम अखैवट भूषित नितसव भुव सिरताज। छवि सित अरुन स्याम सुंदरवर सरस समागम साज। श्रीवृषभानकुँवर प्रीतम मन मज्जन सुक्रत सनाज।।351।।

देखौरी छवि राजकुँवर की। क्रीटमुकट मकराकृत कुंडल भालतिलक भ्रकुटी धन सर की। मृदु मुसक्यान कमल दल लोचन चाल गयंद गरूर चलाकी। सुंदर सुभग सिंगार मनोहर को वरनैं छवि कामति कविकी। रामप्रिया बाई इनऊपर किहि उपमादैउं लख मत भटकी।।352।।

दोहा—जुगल माधुरी लखतनित, धन सखि तुमरौ भाग।।
सावन मनभावन निकट, रहत भरी अनुराग।।354।।

।। बसन्त के पद।।

तुम कहुरे भवरा पियासों जाय। प्रीतम विन मोह अव कछू न सुहाय। एक तौ पिया बिन रहौ न जाय। दूजै वसंत ऋतुराज आय। तीजे पपीहा पिया पिया रटत धाय। सुन सुनकैं मोहि विरहा सताय। अवध छैल राघुराजलाल। दैदरशन कीजे मो निहाल। श्रीरामप्रिया को मिलहु आय। लीजे भुज भरके गरलगाय।।357।।

श्री कनकभवन महिमा

।। फाग ।।

सिया राम हृदय मन भजलैरे। सुनत्रयताप नसालैरे। श्रीरघुनाथ कौ नामकल्पतरु भवसागर को तरलैरे। जो चहवास महल सिया पिया कौ जो कोऊ प्रीत लगा लैरे। रामप्रिया चाहै सुख अपनौ जुगल चरन हिय धरलैरे। ।358 ।।

।। आरती ।।

रंगमहल द्वार सखी आरती समारैं। जुगल नाम जुगल रूप मुख जस उच्चारैं। सेजसकलसाज लिये सैंन भवन राजै। दंपत मुख चंद्र निरख कोट काम लाजैं। कोऊ चौंर छत्र हाथ पंखा सरसावैं। पानदान अंतर लै सुअंग कौं लगावैं। सुभ गुलाब जल सैं चहुँओरन छिरकावैं लै सुतार वीना कोऊ मधुर राग गावैं। रँग उमंग आनँद भर वचन कौ सुनावैं। श्रीरामप्रिया स्वामिनके चरन कमल ध्यावैं। ।362 ।।

आरती करैं अली सियावल्लभकी। गलमेंभुज ग्रीवा में ग्रीवा अजब भैंट भई घन दामिनिकी। कबहुँ मेघदामनी में लपटत कबहुँ दामनी घनमें दमकी। बार बार पिया वदन विलोकत तपन बुझावत विरहा अगिन की। रामप्रियानीरांजन कर पुनि बलिहारी दोऊ रसिक प्रीतम की। ।363 ।।

आरती कीजे सिया-रघुवरकी। क्रीट मुकुट मकराक्रतकुंडल चितवन ललित भावती सुन्दर श्रीरघुवंश उदय दिनकर की। अंग अंग सुखदैनमाधुरी को वरनैं छवि रूप माधुरी। मन भावन नागर प्रीतम की नेतनेत कह वेद जोगावत शंकर ताह हृदय में ध्यावत रामप्रिया सरबस धन मनकी। ।364 ।।

आरत करहैं सखि आनदमन करभोजनबैठे परपंकपर शोभा लखत लाजत दामिनि घन। नैनन नींद अरुनता छाई कमल दलन संपुटत भवँर जन। रामप्रियानीरांजन करकैं सिया वल्लभ पर वारह धनतन। ।365 ।।

इति श्रीवृषभानविनोदे श्रीरानी श्रीमहारानी श्रीसवाई
महेंन्द्रमहारानी श्रीमतीदेवी "वृषभानकुँवरि" जू
खिरियावार वडीसरकार टीकमगढ़ कृत

संपूर्णम्

शुभमस्तु

***

अध्याय 16

BRIEF HISTORY OF KANAK BHAWAN TEMPLE

Kanak Bhawan is the biggest, religiously one of the most important and architecturally aesthetically built Sri Ram Temple in the pilgrim holy town of Ayodhya. Conceived as a palace instead of a temple, it resembles magnificent palaces of Bundelkhand and Rajasthan region of India. It's history dates back to Treta Yug, when it was gifted by Ram's step-mother Kaikeyi to him & his consort Sita as a marriage gift. With the passage of time it fell to ruin, and was reconstructed and renovated many times. The first reconstruction was done by Ram's son Kusha in the beginning of Dwapar Yug; again by King Rishabdeo in middle of Dwapar and Lord Krishna also visited the ancient site in pre-Kali Yug era 614.

In the current Yug (Kali Yug), it was first built by Chandra Gupta Vikramaditya in Yudisthir era 2431, repaired & renovated by Samudra Gupta in 387 A.D. (V.S. 444), destroyed by Nawab S. Salarjung II Gazi in 1027 A.D. (V.S. 1084) and then finally reconstructed on the ruins & renovated in the present shape by H.H. Maharaja Sri Pratap Singh Ju Deo, G.C.S.I., G.C.I.E. of Orchha (Bundelkhand) and his Queen Maharani Vrisbhan Kunwari and consecrated in 1891 A.D. (V.S. 1948) Vaishkh Shukl 6th, Guru Pushya (roughly the month of May).

The temple at present is looked after by Sri Vrisbhan Dharm Setu Pvt. Trust of which Sri Madhukar Shah Ju Deo, the present scion of the Orchha Royal family, is the President.

Location : The temple is situated in the heart of the town of Ayodhya- which lies in Uttar Pradesh state of India. It is well connected by the National Highway and Railway Network to major cities e.g., Lucknow (135 Km.), Gorakhpur (145 Km.), Varanasi (210 Km.) which themselves serve as major intersection for trans-country air, rail and road network.

Contact : Manager, Sri Kanak Bhawan
P.O.-Ayodhya
District-Faizabad
Uttar Pradesh (India) Pin-224123
Telephone : 05278-232024

EDITOR'S NOTE

I am extremely delighted and grateful to my Lord Sri Ram that he chose me against all odds for the job of editing and recasting the old edition of the book titled "Kanak Bhavan Mahima". Initially I had no desire or inclination to do it, but the internal voice kept prodding me. I have been serving the temple since 1987 and it was a matter of great privilege that the Lord wanted the book revamped at my hands.

The earlier edition was not properly planned and produced—for, the most glaring problem with it was that the subject matter was all haphazard, jumbled-up confusing mess, making it difficult to locate any topic when desired while, at the same time, making the reading of the text jerky and inconvenient, as the reader had to jump from one subject or topic to another, only to suddenly come back to it unannounced.

Hence, in this edition, I have separated the motley collection into distinct chapters—collating all relevant information and materials available in the two earlier editions, vetting it for errors, apparent veracity of facts, adding new information and making necessary changes in syntax and text where deemed prudent and proper, without being obtrusive—so that the resultant product becomes refined, convenient and handy, to read and to use, than the earlier editions.

While going through the book, one might get the impression that the incidents cited in chapter 9, specially, are blown out of proportion with the object of glorification of self, or of the place. But the doubting Thomasses must not forget that everything in this world cannot be reduced to logic, science and mathametics, to rationality, matter, energy, atoms, digits, formulas and equations. This creation is a wide, wide place; there is far much beyond than what we can comprehend and even imagine. It is only when we personally experience things that defy logic that all our scepticism is blown away like dust in a storm.

Like the fact that the stars do exist in the sky even during the day though we can't see them, merely denying them just because we can't see them won't help us. Similarly, the radio signals are all around us in the air

surrounding us, but we need a radio receiver to listen, or catch those frequencies. And that radio should also be properly tuned. So, our mental instruments should also be properly 'pruned or tuned' to 'witness' the glories of the Lord. Radio is not a miracle, but it is based on sound scientific principles. God, also, is not a miracle; it is the lack of proper reception-facilities that we usually miss him, doubt him, are sceptical of his presence and call such isolated 'tuned-in' individuals as miraculous. Nothing of that sort. It is only that they have properly tuned instruments that we lack. So, let our doubts blow out like that dust in the storm!

I have written these few lines at the fag-end of this book because a true devotee sits at the feet of his Lord, not on the crown on his head! This book 'Kanak Bhavan Mahima' sings the praises and glories of the Lord, has his holy name, shows his benevolence, benefaction, benignance and benediction towards all, specially his devotees. So, by being at the fag-end, I symbolically, in all humility, wish to sit at the Lord's feet. Further, I have written these lines in English, the language I am conversant with, because a child should speak to his parents in the language he knows best.

Committing errors is in the human nature. Hence, if they are inadvertently still found in the book inspite of my best efforts, I request esteemed readers to overlook them. What matters more than technicalities is the nectar-like glories of the Lord which are offered in this book. I am sure that this will benefit you. Any suggestions for future improvement of the book are welcome.

Date : 14/04/2008
Ganga Dusshera

Ajai Kumar Chhawchharia

Ajai Kumar Chhawchharia
Editor-'Kanak Bhavan Mahima'
36 A, Rajghat Colony, Parikrama Marg
P.O. Ayodhya-224 123 (Faizabad) (U.P.)

Mobile No. (0) 9935613060
Mobile No. (0) 9451290400

Prayer

My Dear Ram
If words could express gratitude and thanks,
Then I'd have poured the entire dictionary
with all its alphabets to the core,
But it is the Thrill and Tears which speak more than words
And are pouring out of my heart and every body pore
That thank you ever so more.

After presenting the bouquet of ever-green flowers of Tulsidas' Dohawali,
Kavitawali, Geetawali & Vinai-Patrika as well as biogrophy of Sri Ram
& Legendary Glory of Hanuman and Veda Vyas' Adhyatma Ramayan
I now garner courage to sing your glories, the world-over renown
And pray to you through the words of Kanak Bhawan Mahima

So many have come and so many shall go
And tide of time shall clean sweep the floor,
But this humble offering of mine
Shall for ever be etched on your memory
Which you can never forgo,
For sure !

I had never thought in my wildest of dreams
That you would deem me fit to be of any service to you,
But that you bestowed upon me this favour
And proved me wrong
Makes me ecstatic and dumb with joy
And greatful to my heart's core.

And for this benediction and benefaction,
I bow my head with atmost reverence to you
AND say 'Thank You'
My Dear Ram !

Date : 14/04/2008
Ram Navami Day

Ajai Kumar Chhawchharia
36 A, Rajghat Colony, Parikrama Marg
P.O. Ayodhya-224 123 (Faizabad) (U.P.)
Mob. : 09935613060
09451290100

श्री कनक भवन विहारिणी बिहारी जी की कृपा से प्राप्त गेंदे के फूल की माला जो भक्त को उन्होंने प्रदान की



नोट- पुस्तक के अध्याय 9, खण्ड 'ख' पृष्ट 72-73 में जिस माला का जिक्र आया है, उसकी फोटो।

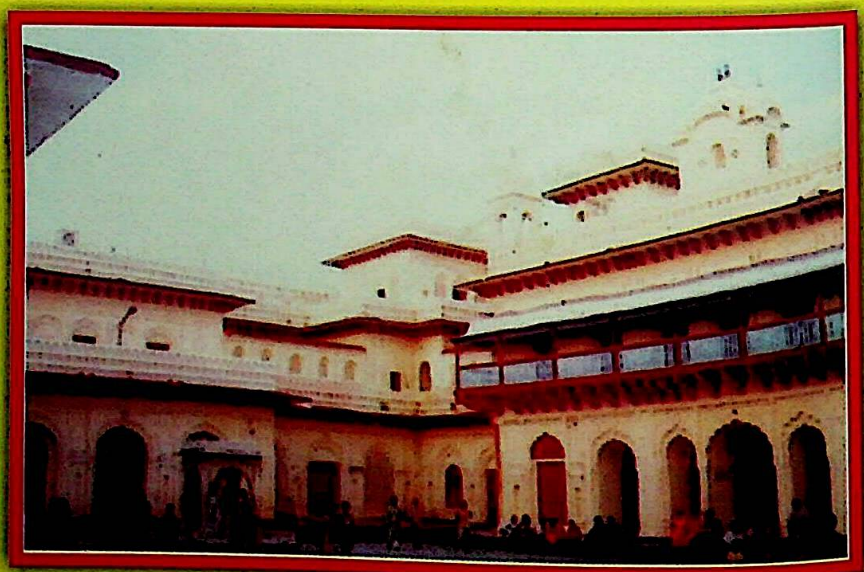


रामनवमी झांकी

Photographs By Pawan Kumar, Mobile No. 9839010626



मन्दिर का पूर्वी दृश्य



मन्दिर के आँगन का दृश्य